महाकस्सप
भगवान बुद्ध के महाश्रावक
(धुतांगधारियों में अग्र)
विपश्यना विशोधन विन्यास

भगवान बुद्ध की उद्घोषणा

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं धुतवादानं यदिदं महाकस्सपो।"

"भिक्षुओ! मेरे धुतांगधारी श्रावकों में अग्र (श्रेष्ठतम) है 'महाकस्सप'।"

—*अङ्गुत्तरनिकाय १.१.१९१*
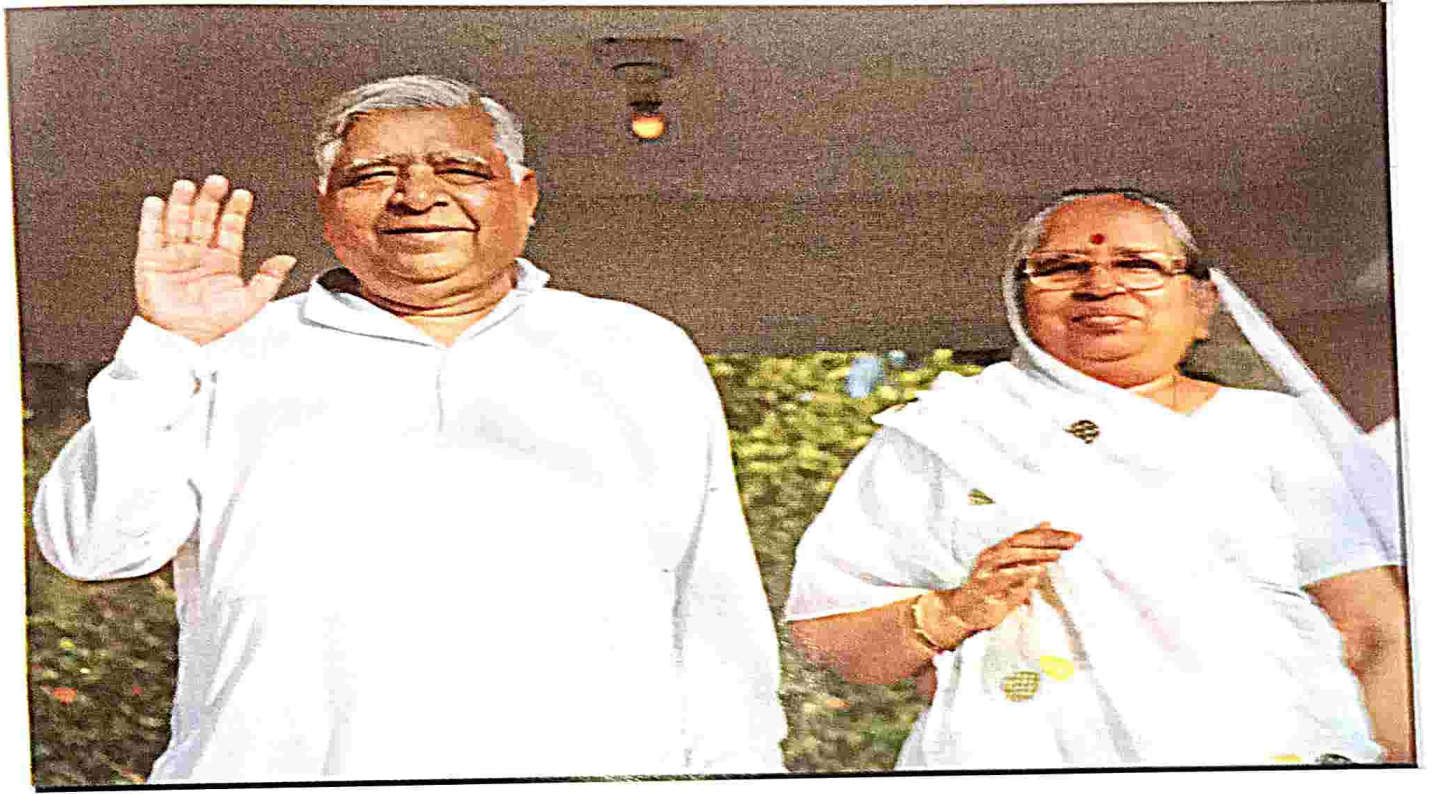
आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का एवं श्रीमती इलायचीदेवी गोयन्का

शील धरम पालन भला, निरमल भली समाधि।
प्रज्ञा तो जाग्रत भली, दूर करे भव-व्याधि॥

भगवान बुद्ध के महाश्रावक

महाकस्सप

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय

थेरगाथा की अट्ठकथा में भगवान बुद्ध के अस्सी 'महाश्रावकों' के नाम गिनाये गये हैं जो वर्णानुक्रम से निम्न प्रकार से हैं –

अङ्गुलिमाल, अजित, अञ्ञासिकोण्डञ्ञ, अनुरुद्ध, अस्सजि, आनन्द, उदय, उपवान, उपसिव, उपसेन, उपालि, उरुवेलकस्सप, कङ्खारेवत, कप्प, काळुदायी, किमिल, कुण्डधान, कुमारकस्सप, खदिरवनियरेवत, गयाकस्सप, गवम्पति, चूळपन्थक, जतुकण्णि, तिस्समेत्तेय्य, तोदेय्य, दब्ब, दारुचीरिय, धोतक, नदीकस्सप, नन्द (१), नन्द (२), नन्दक, नागित, नालक, पिङ्गिय, पिण्डोलभारद्वाज, पिलिन्दवच्छ, पुण्णक, पुण्णजि, पुण्ण मन्ताणिपुत्त, पुण्ण सुनापरन्तक, पोसाल, वाकुल, भगु, भद्दिय (१), भद्दिय (२), भद्रावुध, महाउदायी, महाकच्चायन, महाकप्पिन, महाकस्सप, महाकोट्ठिक, महाचुन्द, महानाम, महापन्थक, महामोग्गल्लान, मेथिय, मेत्तगू, मोघराजा, यस, यसोज, रट्ठपाल, राध, राहुल, लकुण्डकभद्दिय, वक्कलि, वङ्गीस, वप्प, विमल, सभिय, सागत, सारिपुत्त, सीवलि, सुवाहु, सुभूति, सेल, सोण कुटिकण्ण, सोण कोळिवीस, सोभित, हेमक।

इनमें महाश्रावक 'महाकस्सप' का नाम भी है। इस पुस्तिका में इन महाश्रावक का संक्षिप्त जीवनवृत्तांत प्रस्तुत किया जा रहा है।

महाश्रावक महाकस्सप की विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं –

- भगवान गौतम बुद्ध ने इन्हें अपने धुतांग व्रतधारी भिक्षुओं में 'अग्र' घोषित किया था।
- भगवान तथा महाकस्सप ने आपस में चीवरों का आदान-प्रदान किया था जो एक असाधारण घटना थी।

- ध्यान-अभिज्ञा में ये भगवान के जोड़ के थे। भगवान स्वयं कहते थे कि जिन-जिन ध्यान अवस्थाओं को प्राप्त कर मैं विहार करता हूं, मेरा यह श्रावक भी उसी प्रकार विहार कर पाने की क्षमता रखता है।
- देवगण, यहां तक कि उनका राजा सक्क भी, इन महाश्रावक को दान देकर अपने आप को वड़ा भाग्यशाली माना करते थे।
- ये एक आदर्श भिक्षु का जीवन जीते थे। ये एकांतवासी थे, पर्वतारोहण कर जीवन यापन करना इन्हें वहुत प्रिय लगता था। इनकी धारणा थी कि पंच-स्कंधों के उदय-व्यय को जानने से जो प्रीति-प्रमोद जागता है, उसका कोई विकल्प नहीं होता।
- भगवान वुद्ध की अनमोल शिक्षा का हम तक पहुँच पाना इन्हीं की दूरदर्शिता का परिणाम है। भगवान के महापरिनिर्वाण के तुरंत वाद जव सुभद्द नाम के भिक्षु ने भगवान की शिक्षा को नकारते हुए मनचाही करने की आवाज वुलंद की, तव इन्हीं महाश्रावक ने भगवान की समूची शिक्षा का पांच सौ अर्हतों की सभा में संगायन करवा कर धर्म को अपने अक्षुण्ण रूप में प्रतिष्ठापित किया। और यही शिक्षा अपने अविकल रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हम तक पहुँच पायी है जिससे हम सभी लाभान्वित हो रहे हैं।
- इन महाश्रावक के वारे में भगवान की धारणा का नीचे अंकित पंक्तियों से पता चलता है –

"भिक्षुओ! कस्सप अल्पेच्छ है। एकांतवासी है। तीन चीवर मात्र से संतुष्ट रहता है। भिक्षाटन पर ही निर्भर रहता है। वह सदा ऐसा ही वना रहना चाहता है ताकि वर्तमान के व भविष्य के श्रावक जानें कि वुद्ध के शिष्य को कैसा होना चाहिए। वहुजनहिताय, वहुजनसुखाय – वह ऐसा आचरण करता है। तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिए।"

इसी प्रकार से अन्य महाश्रावकों के इतिवृत्त भी प्रकाशित करने की योजना है जिससे विपश्यी साधक एवं साधिकाएं उनसे प्रेरणा पाकर अपनी जीवन-शैली का पुनरवलोकन कर इसका यत्किंचित परिष्कार कर सकें।

विपश्यना विशोधन विन्यास

महाकस्सप का भव-संसरण

भगवान पदुमुत्तर का शासनकाल

एक लाख कल्प पूर्व भगवान पदुमुत्तर के काल में 'महाकस्सप वेदेह' नाम का श्रद्धावान साधक हुआ, जो अपार धन-संपदा का स्वामी था। उपोसथ के दिन वह शास्ता का वंदन करने गया। वहां भगवान पदुमुत्तर 'महानिसभ' नाम के तृतीय श्रावक को 'अग्र' की उपाधि देते हुए इस प्रकार संबोधित कर रहे थे –

"भिक्षुओ! मेरे श्रावक भिक्षुओं में जो धुतवादी हैं, उनमें निसभ अग्र है, श्रेष्ठ है।"

यह सब देख-सुन, वेदेह परम प्रसन्न हुआ तथा शास्ता को भिक्षुसंघ सहित अपने यहां संघदान के लिए निमंत्रण दिया।

भगवान ने कहा – "उपासक! भिक्षुसंघ अत्यंत विशाल है।"

"भगवन! एक भी न छूटे। सभी मेरे यहां पधार कर संघदान प्राप्त करें।"

भगवान से सहमति प्राप्त कर वेदेह प्रमुदित चित्त से संघदान की तैयारियों में जुट गया। दूसरे दिन भगवान भिक्षुसंघ सहित वेदेह के यहां गये। उसने उनकी समुचित वंदना कर उन्हें अत्यंत आदर-सत्कार सहित संघदान दिया।

तभी महानिसभ भिक्षाटन के लिए उसी गली में आये। वेदेह ने उनसे भिक्षापात्र लिया तथा आग्रह किया – "भंते! घर में पधारें, शास्ता भी बैठे हैं।" निसभ ने कहा कि यह नहीं हो सकता और भिक्षा प्राप्त कर वहां से प्रस्थान कर गये। वेदेह ने यह संपूर्ण वृत्तांत भगवान पदुमुत्तर को कह सुनाया तथा पूछा – "भंते, शास्ता अंदर हैं, यह जानकर भी निसभ ने यहां आने में कोई रुचि नहीं दिखायी। ऐसा क्यों?"

बुद्ध कभी भी प्रशंसा करने में कंजूसी नहीं करते। उन्होंने कहा, निसभ ठीक ही कहता है। वह हम लोगों की तरह भिक्षा की आशा में प्रतीक्षा करता हुआ बैठा नहीं रहता। हम गांव की सीमा में शयनासन पर सोते हैं, वह

जंगल में रहता है। हम छाये हुए घर में रहते हैं, वह खुले आकाश के तले रहता है। ये उसके विशेष गुण हैं। भगवान अत्यंत मोद से यह सब बखान कर रहे थे।

वेदेह ने सोचा – "मुझे अन्य सुख-वैभव से क्या लेना-देना? क्यों न मैं भी किसी सम्यक संबुद्ध का ऐसा ही अग्र-शिष्य बनूं?" सात दिन के महादान के पश्चात शास्ता को तीन चीवर भेंट कर, उसने अपनी उक्त इच्छा व्यक्त की। शास्ता ने जाना – इसने दुर्लभ कामना की है, लेकिन इसे पूर्ण करने की योग्यता रखता है। इसलिए कहा –

"एक लाख कल्प पश्चात, ओक्काक कुल के गौतम बुद्ध के काल में, तुम उनके महाकस्सप नाम के तृतीय अग्रश्रावक होगे।"

यह सुनकर वेदेह अत्यंत प्रसन्न हुआ! क्योंकि वह जानता था कि बुद्ध जो होने योग्य होता है, वही कहते हैं। अतः मेरी इच्छा भी अवश्य पूर्ण होगी। संघदान की आत्मसंतुष्टि एवं शास्ता की करुणा, मैत्री से आप्लावित, मुदित चित्त वेदेह घर लौटा। जीवनपर्यंत शील का पालन करते हुए दान देता रहा और मरणोपरांत स्वर्ग में पैदा हुआ।

भगवान विपस्सी का शासनकाल

तत्पश्चात आज से इक्यानवे कल्प पूर्व, जब विपस्सी सम्यक संबुद्ध बन्धुमती नगरी के निकट खेम मिगदाय में विहार करते थे, तब वहां ये एक निर्धन ब्राह्मण कुल में जन्मे। ब्राह्मण एवं उसकी पत्नी के पास पहनने को एक-एक ही वस्त्र था। ऊपर से ओढ़ने के लिए दोनों एक ही वस्त्र का उपयोग करते। जब जिसे आवश्यक होता, वह घर से बाहर जाता तथा दूसरा घर पर ही रहता। इस कारण से लोग उसे 'एकसाटक' ब्राह्मण कहकर संबोधित किया करते थे।

उस समय भगवान विपस्सी हर सातवें वर्ष धर्मोपदेश दिया करते थे। प्रजा बड़ी आतुरता से उनकी प्रतीक्षा किया करती थी। संपूर्ण जंबूद्वीप में सूचना दी जाती थी कि भगवान उपदेश देंगे। यह जानकारी मिलने पर इन दोनों के मन में भी धर्मोपदेश सुनने की उत्कंठा जागी। दोनों पति-पत्नी ने

तय किया कि ब्राह्मणी दिन में तथा ब्राह्मण रात में उपदेश सुनने जाया करेगा।

शास्ता अपनी अलौकिक धर्मवाणी से प्रवचन दे रहे थे। सभी धर्मगंगा में अवगाहन कर, उसका लाभ उठा रहे थे। प्रवचन के अंत में ब्राह्मण को प्रबल प्रीति उत्पन्न होकर, पूरे शरीर में व्याप्त हो गयी। दान का भाव जागा। ऊपर से ओढ़े हुए वस्त्र के अतिरिक्त देने को कुछ नहीं था। पहले सोचा – यही वस्त्र शास्ता को अर्पित करूं, फिर मन में विचार आया कि एक ही वस्त्र मैं और ब्राह्मणी दोनों प्रयोग करते हैं। यह भी दे दूं, तो काम कैसे चलेगा? अतः दान का विचार त्याग दिया। रात्रि के प्रथम प्रहर तथा मध्य प्रहर में पुनः वैसा ही भाव जागा, पर स्वयं को रोक लिया। अंतिम प्रहर में जब वैसा ही हुआ तब ब्राह्मण ने सोचा – "या तो मर जाऊंगा या तर जाऊंगा।" ऊपरी वस्त्र शास्ता के पांव पर रख कर तीन बार नाद किया – "मैं जीत गया! मैं जीत गया!! मैं जीत गया!!!"

बन्धुम राजा भी उसी धर्मसभा में आसीन थे। उन्हें ब्राह्मण का यह जीतनाद नहीं रुचा। सेवक को भेजकर जानना चाहा कि ब्राह्मण ऐसा क्यों कह रहा है? ब्राह्मण ने बताया – "राजा बड़ी-बड़ी सेना ले, तरह-तरह के अस्त्रों-शस्त्रों से लैस हो, शत्रु को पराजित करते हैं, वैसे ही मैंने अपने मात्सर्यपूर्ण चित्त का मर्दन कर, अपना एकमेव वस्त्र बुद्ध को दान दिया है। मानों अपने पीछे पड़े बैल के मस्तक पर प्रहार कर उससे पिंड छुड़ाया है।"

राजा ने सोचा – "दान की महिमा तथा सम्यक संबुद्ध के प्रताप को ब्राह्मण ने ही सही प्रकार से जाना है। हम उसके पासंग भी नहीं हैं।" राजा ने ब्राह्मण को एक जोड़ा वस्त्र भेंट किया। ब्राह्मण ने विचार किया – "मुझे ये वस्त्र पहले तो नहीं मिले थे। शास्ता के गुणों के वंदनास्वरूप ही मुझे ये प्राप्त हुए हैं। वस्तुतः मैं इनका अधिकारी नहीं हूं।" यह सोच ब्राह्मण ने ये वस्त्र शास्ता को भेंट कर दिये। जब राजा को यह ज्ञात हुआ तब उसने दो, फिर चार, इस प्रकार क्रमशः बत्तीस जोड़े ब्राह्मण को भेंट किये। हर बार वह उन्हें शास्ता को भेंट कर देता। अंत में उसे लगा, मेरा यह कृत्य हर बार राजा से और अधिक मांगने के सदृश ही है। इसलिए एक जोड़ा स्वयं के

लिए और एक जोड़ा ब्राह्मणी के लिए रखकर, बाकी भगवान को अर्पण कर दिये।

राजा ने ब्राह्मण को जाड़े के समय एक दिन धर्म सुनते देख, एक लाख मूल्य का अपना ओढ़ने वाला कंबल देकर कहा – आज से इसे ओढ़कर ही धर्म सुनें। ब्राह्मण ने सोचा – इस सड़ी-गली (गंदी, नश्वर) काया पर ऐसे सुंदर कंबल को रखने का क्या प्रयोजन। यह सोच, गंधकुटी के भीतर जाकर, तथागत के मंच के ऊपर बिछाकर लौट आया। एक दिन राजा शास्ता से मिलने गंधकुटी पहुँचा। उस समय छः रंगों की बुद्ध-रश्मियां निकल कर कंबल से टकरा रही थीं, कंबल बड़ा ही अच्छा लग रहा था। राजा ने देखते ही पहचान लिया और कहा – "भंते! हमारे पास ऐसा ही कंबल था। हमने उसे एकसाटक ब्राह्मण को दिया था।"

भगवान ने कहा – 'महाराज! आपने ब्राह्मण की पूजा की, और ब्राह्मण ने मेरी।' राजा ने सोचा – 'ब्राह्मण ने ठीक जाना, मैंने नहीं'। और प्रसन्न होकर जो कुछ मनुष्यों के लिए उपयोग की वस्तुएं थीं, उन सभी के आठ-आठ दान-स्वरूप देकर, ब्राह्मण को राजपुरोहित के स्थान पर रखा।

अंतरालः भगवान कोणागमन तथा कस्सप के शासनकाल

इसके बाद इस भद्र कल्प में कोणागमन तथा कस्सप बुद्धों के अंतराल में, महाकस्सप का बाराणसी में एक मुखिया के घर जन्म हुआ। बड़ा होने पर एक दिन ये किसी जंगल में पैदल जा रहे थे। तब इन्होंने किन्हीं पच्चेकबुद्ध को नदी किनारे चीवर सीते हुए देखा। तेज हवा चलने से उन्हें चीवर सीने में कठिनाई हो रही थी। यह देख उन्होंने पच्चेकबुद्ध को चीवर अर्पित किया। एक बार पच्चेकबुद्ध उनके घर भिक्षा के लिए आये। वहां उनकी बहन और पत्नी में झगड़ा चल रहा था। बहन ने पच्चेकबुद्ध को भिक्षा प्रदान की तथा कामना की कि भाभी जैसे मूर्खों से सदा दूर ही रहूं। पत्नी ने सोचा – इसकी भिक्षा पच्चेकबुद्ध ग्रहण न करें। पत्नी ने भिक्षापात्र छीनकर भोज्य पदार्थ फेंक दिये तथा पात्र में कीचड़ भर दिया। बहन बोली – "मुझसे तुम्हारा जो भी वैर हो, लेकिन दो असंख्येय कल्पों तक पारमिताएं संग्रह करने वाले पच्चेकबुद्ध के भिक्षापात्र में दिये गये भोजन का यूं अनादर करना उचित नहीं है।" पत्नी को अपनी गलती का अहसास हुआ। अतः भिक्षापात्र को सुगंधित चूर्ण से चमका कर, इसे स्वादिष्ट भोजन से भर कर, पच्चेकबुद्ध के हाथ में रख कर यह प्रार्थना की, कि जैसे यह पात्र चमक रहा है, वैसे ही मेरा शरीर भी चमके। तब से दंपति आजीवन कुशल कर्म करते रहे और मरणोपरांत स्वर्ग में उत्पन्न हुए।

भगवान कस्सप का शासनकाल

कस्सप सम्यक संबुद्ध के काल में दोनों पति-पत्नी अलग-अलग श्रेष्ठी कुलों में जन्मे, जिनके असीम वैभव का कोई ठिकाना न था। युवावस्था में वे दोनों विवाह के बंधन में बँधे। कन्या ने गृहप्रवेश किया। उसके शरीर से असहनीय दुर्गंध उठती थी तो पति ने उसे वापस मायके भेज दिया। ऐसे ही वह सात बार सात पतियों द्वारा मायके भेजी गयी। पूर्व में पच्चेकबुद्ध के भिक्षापात्र को गंदा करने का ही यह दुष्परिणाम सामने आया।

भगवान कस्सप का परिनिर्वाण हुआ। भगवान की शरीरधातु स्थापित करने के लिए स्वर्णजटित एक योजन ऊंचे चैत्य का बनना आरंभ हुआ। श्रेष्ठीकन्या ने सोचा – "मैं सात बार पतिगृहों से निष्कासित की गयी, मेरा जीवन व्यर्थ है।" अतः उसने अपने सभी स्वर्ण आभूषणों की एक ईंट बनवायी, उसे लेकर वह चैत्य के निर्माणस्थल पर गयी। वहां जाकर देखा कि बस, अभी अंतिम ईंट जोड़ना ही शेष रह गया है। उसने राजमिस्त्री को कहा – "यह ईंट लगा दो।" राजमिस्त्री ने कहा – "माते! शुभ मुहूर्त आ पहुँचा है। आप ही इसे अपने हाथ से लगा दें।" उसने ईंट जोड़ी तथा कामना की कि मैं जहां-जहां जन्म लूं, मेरे शरीर से चंदन की सुगंध आये तथा मुख से कमल की।

श्रेष्ठीपुत्र को पुनः अपनी परित्यक्ता पत्नी की याद आयी तो उसने उसे अपने घर बुलवा लिया। इस बार उसके गृहप्रवेश करने पर घर चंदन तथा कमल की गंध से भर गया। पति ने जिज्ञासा प्रकट की – "ऐसा परिवर्तन किस प्रकार हुआ?" इस पर पत्नी ने सारी बात कह सुनायी। पति ने सोचा – "अवश्य ही बुद्ध की शिक्षा मुक्ति (मोक्ष) की ओर ले जाने वाली है।" अतः उसने भी चैत्य की सजावट के लिए स्वर्ण-कमल की झालर दान दी

तथा इस पुनीत कार्य में तन-मन-धन से अपना सहयोग दिया। फलस्वरूप स्वर्ग का अधिकारी हुआ।

****

स्वर्ग से च्युत होकर श्रेष्ठीपुत्र वाराणसी के एक अमात्य कुल में पुत्र के रूप में जन्मा। मां द्वारा पहनने के लिए वस्त्र दिये जाने पर उसने कहा – "मां, यह बहुत मोटा है।" मां ने दूसरा वस्त्र निकाल कर दिया, उसे भी फेंक दिया। तीसरा निकाल कर दिया, उसे भी फेंक दिया। तब मां ने कहा – "पुत्र! हमारे ऐसे पुण्य नहीं कि हमें इससे महीन वस्त्र प्राप्त हों।"

"तो मां, मैं वहां जाऊंगा, जहां वैसा पुण्य मिल सके।"

"पुत्र! मैं तो चाहती हूं कि आज ही तुझे वाराणसी नगर का राज्य मिले।"

उसने मां को प्रणाम किया और कहा – "मां मैं जा रहा हूं"। मां ने जाने की अनुमति देते हुए सोचा – कहां जायगा, यहां-वहां जाकर, घर में वापस आयगा। लेकिन वह घर से निकल कर वाराणसी गया और उद्यान में जाकर शरीर को वस्त्र से ढँककर लेट गया।

उस दिन वाराणसी के राजा का देहांत हुए सातवां दिन हुआ था। अमात्यों ने राजा का दाह-संस्कार कर आंगन में बैठ मंत्रणा की – "राजा की एक लड़की है। लड़का नहीं है। राज्य को बिना राजा का नहीं होना चाहिए, कौन राजा होगा?" राजपुरोहित ने कहा – "राजा का रथ छोड़ दो, वह राज्य के उत्तराधिकारी की खोज लायगा।" रथ उद्यान में सोये युवक के समीप जाकर, ठहर गया। राजज्योतिषी ने युवक के शारीरिक लक्षण देखकर कहा – "यही हमारा राजा होगा।" युवक का राज्याभिषेक हुआ तथा राजकन्या से विवाह भी।

एक दिन रानी ने राजा की महान संपत्ति देखकर कहा – "अतीत काल में आपने बुद्ध में श्रद्धा रखकर कल्याण का काम अवश्य किया होगा, लेकिन भविष्य के लिए आप कुछ नहीं कर रहे हैं।"

राजा बोला – "कोई शीलवान दिखाई नहीं देता, दान किसे दूं?"

रानी ने कहा – "जंबूद्वीप अरहंतों से शून्य नहीं है। आप दान की तैयारी करें, मैं अरहंतों का आह्वान करूंगी।"

राजा ने पूरब द्वार पर दान की तैयारी की। देवी ने पूर्व दिशा की ओर अरहंतों का आह्वान किया। कोई नहीं आया। इसी प्रकार दक्षिण एवं पश्चिम दिशा से भी कोई नहीं आया। उत्तर दिशा में आह्वान करने पर हिमालय पर निवास करने वाले पांच सौ पच्चेकबुद्धों ने भिक्षा स्वीकारी। राजा ने अपने नगर में उनके लिए पांच सौ पर्णकुटियां बनवा दीं तथा प्रार्थना की कि आप यहीं निवास एवं साधना करें। पच्चेकबुद्धों ने स्वीकार किया। राजा-रानी पच्चेकबुद्धों की सेवा के लिए सदा तत्पर रहते।

एक दिन राजा जब सीमाप्रांत पर कोई विद्रोह शांत करने के लिए जाने लगा, तब रानी से कहा – "पच्चेकबुद्धों की सेवा में प्रमाद न करना।" रानी उनकी सेवा का बड़े मनोयोग से प्रबंध करती रही। एक दिन देवी पच्चेकबुद्धों के बैठने के स्थान को हरे रंग से लिपवाकर, फूलों को बिखेर कर, धुआं दे उनके आगमन की प्रतीक्षा करती बैठी थी। उन्हें न आते देख, सेवक को भेजा – "तात! जाओ, पता लगाओ कि आर्यों को कोई कष्ट तो नहीं है।" वह गया और एक पर्णशाला का द्वार खोलकर, एक पच्चेकबुद्ध की वंदना करके कहा – 'भंते, समय हो गया है।"

ठंडा पड़ा शरीर भला क्या कहता?

उसने सोचा – "मालूम पड़ता है ये सो रहे हैं।" वह उनके पास गया और पीठ और पैर को छुआ। पैरों के ठंडा तथा कड़ा हो जाने से यह जान गया कि ये परिनिर्वृत्त हो गये हैं। द्वितीय पच्चेकबुद्ध के पास गया, इसी प्रकार तृतीय तथा सभी पच्चेकबुद्धों के पास गया। सभी परिनिर्वृत हो गये हैं, यह जान राजमहल में वापस आ गया।

"तात! पच्चेकबुद्ध कहां हैं?" रानी द्वारा पूछे जाने पर उसने कहा – "देवी! वे सभी परिनिर्वृत हो गये हैं।" रोती, क्रंदन करती हुई रानी बाहर निकली और नगरवासियों के साथ जाकर पच्चेकबुद्धों का दाह-संस्कार किया। उनकी शरीरधातु को लेकर चैत्य में प्रतिष्ठापित किया।

राजा सीमाप्रांत के विद्रोह को शांत कर जब वापस आया तब स्वागत के लिए गयी देवी से पूछा –

"देवी! पच्चेकबुद्धों की सेवा में प्रमाद तो नहीं किया? वे आर्य निरोग हैं न!"

"देव! वे सभी परिनिर्वृत्त हो गये।"

राजा ने सोचा – "इस तरह के पंडितों को भी परिनिर्वृत्त होना पड़ता है, तो हमारी मुक्ति कहां?" वे नगर न जाकर उद्यान ही गये और ज्येष्ठ पुत्र को बुलवाकर, उसे राज्य सौंप स्वयं श्रमण-प्रव्रज्या ले ली। देवी ने यह सोचा कि 'जब ये ही प्रव्रजित हो गये हैं तो मैं क्या करूंगी।' वह भी उद्यान में ही प्रव्रजित हो गयी। दोनों ने ध्यान-भावना की और वहां से च्युत हो दोनों ब्रह्मलोक में जन्मे।

भगवान गौतम बुद्ध का शासनकाल

जब वे दोनों ब्रह्मलोक में थे, तभी हमारे शास्ता ने लोक में जन्म ग्रहण कर धर्मचक्रप्रवर्त्तन किया। शास्ता जब राजगह (राजगीर) में रह रहे थे, तभी मगध राष्ट्र के महातित्थ गांव में कपिल ब्राह्मण के घर, ब्राह्मणी की कोख से राजा ने पिप्पली माणव के रूप में जन्म लिया तथा रानी ने मद्द राष्ट्र के सागल नगर में, कोशिय गोत्रीय ब्राह्मण की पत्नी की कोख से भद्दा कापिलानी के रूप में जन्म लिया। पिप्पली माणव जब बीस वर्ष के हुए तो माता-पिता ने उसका विवाह कर देने की इच्छा प्रकट की। माणव ने कहा – "आपके रहने तक मैं आप दोनों की सेवा करूंगा, फिर संन्यास ले लूंगा।" माता-पिता फिर भी सदा विवाह के लिए दबाव डालते रहे।

माणव ने बात टालने के लिए स्वर्णकार से किसी भी प्रकार से दोष-रहित एक स्त्री की अति सुंदर प्रतिमा बनवायी तथा मां से कहा – "यदि ऐसी स्त्री मिलेगी तो ही विवाह करूंगा।" माणव ने सोचा, "ऐसी स्त्री मिलना असंभव है, तो विवाह भी नहीं होगा।" मां ने सोचा, "मेरा पुत्र पुण्यवान है, दानशील है। अवश्य ही कोई-न-कोई कन्या होगी जो इसकी कल्पना के समान होगी।" मां ने ब्राह्मणों को चारों दिशाओं में भेजा कि यदि स्वर्ण प्रतिमा के सदृश कोई कन्या हो तो विवाह का प्रस्ताव भिजवाओ। ब्राह्मणों को भद्दा कापिलानी के बारे में जानकारी मिली। वह बिल्कुल स्वर्ण प्रतिमा जैसी ही थी। दोनों ओर के माता-पिता विवाह के लिए सहमत हो गये। पर भद्दा कापिलानी, माणव की तरह ही विवाह नहीं करना चाहती थी। दोनों ने एक-दूसरे को पत्र लिखा कि वे प्रव्रजित होना चाहते हैं तथा वैवाहिक संबंध के बारे में अनिच्छा प्रकट की। लेकिन सेवकों ने रास्ते में उनके पत्र पढ़कर फाड़ दिये और अपने तरीके से पत्र लिख कर उन तक भिजवाया। अंततः न चाहते हुए भी दोनों का विवाह संपन्न हो गया। पर उन्होंने वैवाहिक जीवन व्यतीत नहीं किया। दोनों ब्रह्मचर्य का ही पालन करते रहे।

पिप्पली माणव सत्तासी करोड़ की पैतृक संपत्ति का स्वामी था। साठ बड़े-बड़े तालाब थे। बारह योजन तक व्यापार फैला था। माता-पिता के देहांत हो जाने पर अगाध संपत्ति का स्वामी हुआ। एक दिन माणव अलंकृत घोड़े पर चढ़कर कारोबार देखने गया। वहां जब खेत के ऊपर खड़ा था तब उसने हल द्वारा जोते गये स्थान पर पक्षियों द्वारा कीड़ों को निकाल कर भक्षण करते हुए देखा। उसने अपने सेवकों से पूछा – "तात! इन पक्षियों द्वारा किया गया पाप किसको लगेगा?" सेवकों ने कहा - "आर्य! आपको।" माणव ने सोचा – "यदि इनके द्वारा किया गया पाप मुझको लगेगा, तो सत्तासी करोड़ धन मेरे किस काम का, बारह योजन तक फैला व्यापार किस काम का, यंत्र लगे साठ बड़े तालाब किस काम के, और चौदह गांव किस काम के? इन सबको मैं भद्दा कापिलानी को सौंपकर, घर से बेघर हो प्रव्रजित होऊंगा।"

उधर भद्दा कापिलानी महल की छत पर चढ़ी थी। दासी ने छत पर सूखने के लिए तिल फैला रखे थे। तिल में से निकलने वाले जीवों को कौवे खा रहे थे। उसने दासियों से पूछा – "इसका पाप किसको लगेगा?" दासियों ने कहा – "देवी! इसका पाप आपको ही लगेगा।" रानी ने सोचा – "मुझको तो चार हाथ का वस्त्र और नालि के प्रमाण भर भात ही पर्याप्त है। लेकिन यदि इन कौवों द्वारा किया गया पाप मुझको लगेगा, तो निश्चय ही हजार भव-चक्रों में सिर उठा नहीं सकूंगी। आर्यपुत्र के आते ही सारी संपत्ति उनको सौंप घर से बेघर हो प्रव्रजित होऊंगी।"

पिप्पली माणव के घर पहुँचते ही दोनों ने अपने-अपने मन की बात एक दूसरे को कह सुनायी। दोनों ने एक-दूसरे के केश काटे, दोनों ने कषाय वस्त्र धारण किये, और भिक्षापात्र ले, यह संकल्प कर महल से बाहर निकले कि

"जो लोक में अर्हत हैं, उनको उद्देश्य कर हमारी प्रव्रज्या है।" न किसी नौकर को, न किसी अन्य को अपनी प्रव्रज्या की सूचना दी।

जब वे ब्राह्मणगांव से निकल नौकरों के गांव के द्वार पर पहुँचे, तब दास-दासियों ने उन्हें पहचान लिया। वे रोते हुए उनके पैरों पर गिर पड़े और कहने लगे – "क्यों हमें अनाथ करते हैं आर्य?" इस पर उन्हें समझाया कि हमें यह भव जलती हुई पर्णकुटी के समान लग रहा है। तुम लोग भी अपनी-अपनी मुक्ति के लिए सोचो।

माणव ने आगे चलते पीछे मुड़कर देखा और सोचा – "यह भद्दा कापिलानी पूरे जंबूद्वीप में प्रसिद्ध है और सुंदर है। यह मेरे पीछे-पीछे चलती है। ऐसा संभव है कि कोई ऐसा सोचे कि ये प्रव्रजित होकर भी अलग नहीं रह सकते। हमारे बारे में ऐसा विचार लाकर कोई मन में पाप उत्पन्न कर सकता है।" माणव ने भद्दा को यह विचार बताया और कहा – "यहां दो रास्ते हैं। एक पर तुम चलो, और दूसरे पर मैं।" भद्दा ने कहा – "हां आर्य, प्रव्रजितों के लिए स्त्रियां मल के समान होती हैं।" भद्दा ने माणव को प्रणाम किया और कहा – "कल्पों तक साथ-साथ चलने वाले सहचर आज अलग होते हैं।" माणव दायीं ओर तथा भद्दा बायीं ओर वाले मार्ग पर चल पड़ी। यह देख पृथ्वी यह कहती हुई कांप उठी – "विशाल पर्वतों को वहन करने वाली होकर भी मैं तुम दोनों के सद्गुणों को धारण करने में असमर्थ हूं।" आकाश से बिजली गिरने का सा नाद हुआ। पर्वत हिल उठे।

उस समय भगवान गौतम बुद्ध वेळुवन महाविहार में विराज रहे थे। उन्होंने जाना, अपार संपदा का त्याग कर, मुझको उद्देश्य कर, माणव एवं भद्दा कापिलानी प्रव्रजित हुए हैं। भगवान तुरित-चारिका (देखिए परिशिष्ट ३) करते हुए तीन गव्यूति मार्ग तक गये और राजगीर एवं नालंदा के बीच एक विशाल बरगद के वृक्ष के नीचे पालथी मार कर बैठ गये। भगवान बुद्ध ऐसे देदीप्यमान हो रहे थे मानों हजारों सूर्य और चंद्रमा उगने वाले हों। प्रकृति भी उनका अभिनंदन करने लगी। पेड़-पौधे फलों और फूलों से लद गये, और स्वर्णिम प्रकाश से ज्योतिर्मय हो उठे।

माणव (महाकस्सप) ने जब दूर से ही शास्ता को देखा तो उन्हें वंदन किया और तीन बार उद्घोष किया – "आप मेरे शास्ता हैं, मैं आपका श्रावक

हूं।" भगवान ने महाकस्सप को तीन उपदेशों* से उपसंपदा दी। महापुरुषों वाले बत्तीस लक्षणों से युक्त शास्ता विशाल वृक्ष के नीचे से उठे। उनके पीछे महापुरुषों के सात लक्षणों से मंडित महाकस्सप चले। सोने की विशाल नाव के पीछे जैसे कोई दूसरी छोटी नाव चलती हो, वैसे ही शास्ता के पीछे-पीछे वे चलने लगे। कुछ दूर जाकर भगवान ने पुनः वृक्ष की छाया में बैठना चाहा। महाकस्सप ने अपना ओढ़ने वाला वस्त्र आसन की तरह उनके लिए बिछा दिया। भगवान ने कहा – "कस्सप, तुम्हारा वस्त्र कोमल एवं नरम है।"

कस्सप ने निवेदन किया –

"भंते! आप इसे स्वीकार करें।"

"कस्सप! तुम क्या ओढ़ोगे?"

"भगवन! मैं आपका पुराना वस्त्र ओढ़ूंगा।"

"कस्सप! तुम इतना सामर्थ्य रखते हो कि मेरा पुराना चीवर धारण कर सको। जो बल में समान हैं, आचरणवान हैं, पांशुकूलिक हैं, वही मेरे पुराने चीवर को धारण कर सकते हैं।"

भगवान और कस्सप ने अपने-अपने चीवर आपस में बदले। महापृथ्वी फिर कांप उठी। पहले कभी ऐसा नहीं हुआ कि भगवान ने अपना पहना हुआ चीवर किसी श्रावक को दिया हो। महाकस्सप ने सोचा – "मुझे भगवान के चीवर पहनने योग्य बनना ही होगा।" मात्र सात दिनों तक ही तेरह धुतंगों (भिक्षुओं के विशेष नियम व साधना) को धारण कर वे पृथग्जन रहे और आठवें दिन सूर्योदय होते ही चारों प्रतिसंभिदाओं के साथ अर्हत्व को प्राप्त हुए। भगवान ने कहा – "मेरे धुतंगधारी श्रावकों में अग्र है महाकस्सप।" और उनको धुतंगधारी श्रावकों में अग्र की उपाधि दी, पहले स्थान पर रखा।

–संयुतनिकाय अट्ठकथा २.२.१५४, चीवरसुत्तवण्णना

---

* तीन उपदेश जातिजन्य घमंड, पांडित्यजन्य घमंड तथा आत्मस्नेह तोड़ने से संबंधित थे।

महाकस्सप भिक्षुओं से –

पूर्वबुद्धों के शासन में कल्पों तक पारमिताएं पूर्ण करते हुए प्राप्त स्वानुभवों का लाभ अन्य साधकों को भी मिले, इसके लिए जो भी भिक्षु संघ, समूह, परिवार के प्रति आसक्त हो, साधनापथ से विमुख होने लगते थे, उन्हें सजग करने के लिए महाकस्सप कहते हैं –

- भिक्षु को एकांतवासी होना चाहिए। दूसरों की संगत एवं मेल-मिलाप से मन को भटकने के लिए चारों ओर से आलंबन मिलेंगे। इससे बहिर्मुखी हो जाओगे तथा आसक्ति बढ़ेगी। एकाग्रता, समाधि दुर्लभ हो जायगी, जो दुःखदायी सिद्ध होगी।

- संग्रह करने की प्रवृत्ति दुःख, व्याकुलता और विकारों का संवर्धन करेगी। भोग-विलास के स्थान पर भी न जाओ। उनके प्रति लगाव परम सुख निर्वाण की प्राप्ति के लक्ष्य में बाधक बनता है।

- अपना सत्कार-पूजन करवाने की प्रवृत्ति से भिक्षु दूर रहें। यह 'मैं-मेरे' के प्रपंच को बढ़ाती है। यह शरीर में चुभा ऐसा कांटा है जो बड़ी कठिनाई से निकल पाता है।

- बिना किसी चुनाव या इच्छा के भिक्षु चीवर तथा भिक्षा, जैसी भी प्राप्त हो, समतापूर्वक वैसी ही ग्रहण करें। (एक बार मैं भिक्षाटन पर गया। एक कुष्ठ रोगी द्वारा अपने कुष्ठगलित हाथों से मुझे भिक्षा प्रदान की गयी। उस समय उसकी एक अंगुलि भी भिक्षापात्र में गिर गयी। मैंने बिना जुगुप्सा के उस भिक्षा को प्रमुदित चित्त से ग्रहण किया और दीवार के निकट उस भोजन को खाया।)

- मैं एकांत में पर्वतों पर जाकर जहां वृक्षों की हरीतिमा एवं छाया है; उनकी चोटियों को स्पर्श करते नीले बादल हैं; शीतल जल-कुंड हैं और चारों ओर पशु-पक्षी कल्लोल करते हैं, विकारों की अग्नि से

दूर, आसक्ति एवं भय रहित होकर ध्यान करता हूं। गृहस्थविहीन क्षेत्र में पड़ी चौड़ी शिलाएं मुझे भाती हैं।

- सभी प्रकार के वाद्य-संगीतों के आकर्षण से दूर रह कर सम्यक विपश्यना में स्वयं को प्रतिष्ठापित करो। पंचस्कंधों के उदय-व्यय को जानने से जो प्रीति-प्रमोद जागता है, उसका कहीं कोई विकल्प नहीं है। भिक्षु इस वितर्क में न पड़े कि मैं श्रेष्ठ हूं या हीन हूं। मैं श्रेष्ठ नहीं हूं या हीन नहीं हूं। जब जैसा है, उसे वैसा ही स्वीकारे।

- भिक्षु सदा अडोल चित्त से समतावान तथा प्रज्ञावान बने रहें।

- सदा अन्य धर्मवानों का आदर करें, अन्यथा धर्म से विमुख ही रह जायेंगे।

- पाप के प्रति लज्जा एवं भय रखें, इससे पुनर्जन्म क्षीण होगा।

- बाह्य जगत में अधिक मेल-जोल रखना तथा सांसारिक कामों में अधिक श्रम करना भिक्षु के लिए अहितकर है।

- जिस भिक्षु का चित्त चंचल एवं विक्षिप्त है, वह भले ही चीवर धारण करता है परंतु उसकी अवस्था वैसी ही होती है जैसे सिंह-चर्म पहने हुए बंदर की।

- जिसका चित्त संक्षिप्त है, स्थिर है, वही गुफा में बैठे सिंह की भांति निर्भय है।

- जो साधक संयतेंद्रिय रहता है उसको देवता एवं ब्रह्मा भी नमस्कार करते हैं; जैसे आयुष्मान सारिपुत्त को किया। भिक्षु को श्रुतसंचयी, अर्थात श्रवणगोचर हुई शिक्षाओं का संचय करने वाला होना चाहिए। जो धर्म आदि, मध्य तथा अंत में कल्याणकारी हो, उसे धारण करना चाहिए।

- जैसे पहाड़ की चोटी पर खड़ा व्यक्ति चारों ओर दृष्टिपात कर सकता है, भिक्षु को भी वैसे ही सभी लोकों का अवलोकन करना चाहिए।
- भिक्षु आरण्यक हो, भिक्षाटन से निर्वाह करे तथा केवल तीन चीवर रखने वाला हो।
- भगवान पदुमुत्तर, भगवान विपस्सी एवं भगवान कस्सप के समय में मैंने इन सम्यक संबुद्धों की वंदना की। धर्म-सेवा की। देव-लोक एवं मनुष्य-योनि में अनेकों बार अच्छे कुलों में जन्म ग्रहण किया। इस जन्म में मैंने अस्सी-कोटि स्वर्ण त्याग कर प्रव्रज्या ली है। धुतंगधारियों में, धुतगुणों में भगवान बुद्ध के अलावा मेरे सरीखा कोई भी नहीं है। मैंने शास्ता की सेवा की है। उनके गुणों को आत्मसात कर मैंने अपने संस्कारों का भार उतार दिया है। अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा। जैसे कमल कीचड़ में भी अपनी पवित्रता अक्षुण्ण बनाये रखता है, वैसे ही शास्ता भी भवचक्र से निर्लिप्त हैं, अनासक्त हैं, निष्काम हैं। उन्हीं का बतलाया हुआ मार्ग एकमात्र मुक्ति का मार्ग है, उसके अलावा कोई अन्य मार्ग नहीं है।

–थेरगाथा १०५४-१०९३, महाकस्सपत्थेरगाथा

****

भगवान गौतम बुद्धः महाकस्सप के बारे में –

चांद की तरह कुलों में जाना

एक समय भगवान सावत्थी (श्रावस्ती) में जेतवन में अनाथपिंडिक के आराम में विहार कर रहे थे। तब भगवान ने भिक्षुओं को "भिक्षुओ" कह कर आमंत्रित किया। "भदन्त" कह भिक्षुओं ने प्रत्युत्तर दिया। भगवान ने ऐसा कहा –

"भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष पुराने कूएं, बीहड़ पर्वत, खतरनाक नदी को देखकर, अपने शरीर और मन को समेटे रहता है, वैसे ही भिक्षुओ! चांद की तरह कुलों में जाओ। अपने शरीर और चित्त को समेटे, सदा नये, अनजान की तरह जाओ।

"भिक्षुओ! कस्सप कुलों में चांद की तरह जाता है, अपने शरीर और चित्त को समेटे, सदा नये, अनजान की तरह।"

****

"भिक्षुओ! तुम क्या समझते हो, कैसा भिक्षु कुलों में जाने के लायक होता है?"

"भंते! धर्म के आधार भगवान ही हैं, धर्म के नायक और आश्रय भगवान ही हैं। अच्छा हो कि भगवान ही इस कहे गये का अर्थ बतायें। भगवान से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।"

तब, भगवान ने आकाश में हाथ फेरा। "भिक्षुओ! जैसे, यह हाथ आकाश में नहीं लगता है, नहीं फँसता है, वैसे ही जिस भिक्षु का चित्त कुलों में जाकर भी नहीं लगता, नहीं फँसता, वही भिक्षु कुलों में जाने लायक होता है । जो लाभकामी हैं वे लाभ पायें; जो पुण्यकामी हैं वे पुण्य पायें। जो भिक्षु जैसे अपने लाभ से संतुष्ट और प्रसन्न होता है, वैसे ही दूसरों के भी लाभ से संतुष्ट और प्रसन्न होता है तो भिक्षुओ! ऐसा ही भिक्षु कुलों में जाने के लायक होता है।

"भिक्षुओ! कस्सप का चित्त कुलों में जाने पर नहीं लगता है, नहीं फँसता है। जो लाभकामी हैं वे लाभ पायें; जो पुण्यकामी हैं वे पुण्य करें। जैसे वह अपने लाभ से संतुष्ट और प्रसन्न होता है, वैसे ही दूसरों के भी लाभ से संतुष्ट और प्रसन्न होता है।"

–संयुत्तनिकाय १.२.१४६, चन्दूपमसुत्त

कुलों में जाने योग्य भिक्षु

"भिक्षुओ! जो भिक्षु इस चित्त से कुलों में जाता है कि, 'मुझे दे ही, ऐसा नहीं कि न दे; बहुत दे, थोड़ा नहीं; बढ़िया ही दे, घटिया नहीं; शीघ्र ही दे, देर न लगाये; सत्कारपूर्वक ही दे, बिना सत्कार के नहीं।'

"भिक्षुओ! यदि उक्त प्रकार से उसे नहीं देते हैं, तो उसे बड़ा दुःख होता है, बेचैनी होती है। भिक्षुओ! वह भिक्षु कुलों में जाने योग्य नहीं है।

"भिक्षुओ! यदि उसे नहीं देते हैं, थोड़ा देते हैं, घटिया देते हैं, देर से देते हैं, बिना आदर-सत्कार के देते हैं, तो भी जिसे दुःख नहीं होता है, बेचैनी नहीं होती है; ऐसा भिक्षु कुलों में जाने योग्य होता है।

"भिक्षुओ! कस्सप कुलों में इसी चित्त से जाता है कि, यदि उसे नहीं देते हैं, थोड़ा देते हैं, घटिया देते हैं, देर से देते हैं, बिना आदर-सत्कार के देते हैं; तो भी उसे दुःख नहीं होता है।

"भिक्षुओ! तुम्हें भी वैसा ही सीखना चाहिए।"

–संयुत्तनिकाय १.२.१४६, चन्दूपमसुत्त

****

"भिक्षुओ! कस्सप कभी भी अपरिशुद्ध धर्मदेशना नहीं करता।"

"भंते! अपरिशुद्ध धर्मदेशना क्या होती है?"

"भिक्षुओ! जो भिक्षु मन में ऐसा सोचकर या भावना कर धर्मदेशना करता है कि, अहो! लोग मेरी धर्मदेशना को सुनें। सुनकर प्रसन्न हों, और प्रसन्न होकर मेरे सामने अपनी प्रसन्नता दिखायें। उसकी धर्मदेशना अपरिशुद्ध होती है।"

"भगवन! परिशुद्ध धर्मदेशना क्या होती है?"

"भिक्षुओ! जो भिक्षु मन में ऐसा सोचकर या भावना कर धर्मदेशना करता है कि, 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म, सांदृष्टिक है काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो कहलाने योग्य है, निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है। अहो! लोग मेरी धर्मदेशना को सुनें। सुनकर धर्म को जानें, और जानकर उसका अभ्यास करें। इस तरह वह उचित रीति से दूसरों को धर्म कहता है। करुणा से, दया से, अनुकंपा से दूसरों को धर्म कहता है। भिक्षुओ! इस प्रकार के भिक्षु की धर्मदेशना परिशुद्ध होती है।

"कस्सप की धर्मदेशना परिशुद्ध होती है। भिक्षुओ! तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिए।"

–संयुत्तनिकाय १.२.१४७, कुलूपकसुत्त

महाकस्सप की दूरदृष्टि

एक समय भगवान राजगीर के वेळुवन में विहार कर रहे थे। तब आयुष्मान महाकस्सप भगवान के पास गये। भगवान के पास जाकर, उन्हें नमस्कार कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे, आयुष्मान महाकस्सप से भगवान ने कहा – "कस्सप! तुम बहुत बूढ़े हो गये हो, यह रूखा पांसुकूल तुमसे पहना न जाता होगा। इसलिए, तुम गृहस्थों के दिये गये चीवर को पहनो, निमंत्रण के भोजन को स्वीकार करो, और मेरे पास रहो।"

"भंते! मैं दीर्घकाल से आरण्यक हूं, पिंडपातिक हूं, पांसुकूलिक हूं, तीन चीवरों को धारण करने वाला हूं, अल्पेच्छ हूं, संतुष्ट हूं, एकांतवासी हूं, उत्साहशील हूं, और मैं इन्हीं की प्रशंसा करता हूं।"

"कस्सप! किस उद्देश्य से तुमने दीर्घकाल से इन गुणों को धारण किया है? और इनकी प्रशंसा करते हो?"

"भंते! दो उद्देश्यों से मैंने दीर्घकाल से इन गुणों को धारण किया है। और इनकी प्रशंसा करता हूं। एक तो स्वयं इस जन्म में सुखपूर्वक विहार करने के लिए; और दूसरे, भविष्य में होने वाली जनता के प्रति अनुकंपा करके, कि कहीं वे भ्रम में न पड़ जायें। जो बुद्ध के श्रावक थे वे बहुत काल से आरण्यक थे, पिंडपातिक थे, पांसुकूलिक थे, तीन चीवरों को धारण करने वाले थे, अल्पेच्छ थे, संतुष्ट थे, एकांतवासी थे, उत्साहित थे – ऐसा जान, वे भी उचित मार्ग पर आयेंगे, जिससे उनका चिरकाल तक हित एवं सुख होगा।"

"ठीक है, कस्सप! ठीक है! तुम बहुतों के हित के लिए, बहुतों के सुख के लिए, लोक पर अनुकंपा करने के लिए; देव और मनुष्यों के परमार्थ के लिए, हित के लिए, और सुख के लिए ऐसा कर रहे हो।

'कस्सप! तुम रूखे पांसुकूल चीवर धारण करो, पिंडपात के लिए विचरण करो, अरण्य में रहो।'

–संयुत्तनिकाय १.२.१४८, जिण्णसुत्त

महाकस्सप की संतुष्टि

एक समय भगवान श्रावस्ती के जेतवन में, अनाथपिंडिक के आराम में विहार करते थे। तब भगवान ने भिक्षुओं को 'भिक्षुओ' कह कर आमंत्रित किया। 'भदंत' कह भिक्षुओं ने प्रत्युत्तर दिया। तब भगवान ने ऐसा कहा –

'भिक्षुओ! कस्सप जैसे-तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन से संतुष्ट रहता है। जैसे-तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन से संतुष्ट रहने की प्रशंसा करता है। इनकी अनुचित खोज में नहीं लगा रहता। इनकी प्राप्ति न होने से वह खिन्न नहीं होता; और मिलने पर बिना ललचाये, उनके दोषों को देखते हुए, आवश्यकतानुसार या कब धारण करने की आवश्यकता नहीं है, यह जानकर इनका उपयोग करता है।

'भिक्षुओ! तुम्हें भी ऐसा सीखना चाहिए – जैसे-तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन से संतुष्ट रहूंगा, और इनकी प्रशंसा करूंगा। इनके लिए अनुचित खोज में नहीं लगूंगा। आवश्यकतानुसार इनका उपयोग करूंगा।'

–संयुत्तनिकाय १.२.१४४, सन्तुट्ठसुत्त

सद्धर्म का लोप

एक समय भगवान श्रावस्ती के जेतवन में, अनाथपिंडिक के आराम में विहार करते थे। तब आयुष्मान महाकस्सप भगवान के पास गये, और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे, आयुष्मान महाकस्सप भगवान से बोले – 'भंते! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है कि पहले कम शिक्षापद थे और (उस पर भी) बहुतों ने अर्हत-पद पा लिया था? भंते! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है कि इस समय शिक्षापद बहुत हैं, पर कम लोग अर्हत-पद पर प्रतिष्ठित हैं?'

'कस्सप! ऐसा ही होता है – सत्त्वों के हीन होने, और सद्धर्म के क्षय होने पर बहुत शिक्षापद होते हैं, और कम भिक्षु अर्हत-पद पर प्रतिष्ठित होते हैं।

'कस्सप! तब तक सद्धर्म का लोप नहीं होता है जब तक सद्धर्म में कोई मिलावट नहीं होती। जब मिलावट की जाती है, नकली धर्म उठ खड़ा होता है तब सद्धर्म का लोप हो जाता है। कस्सप! जैसे, तब तक सच्चे सोने का लोप नहीं होता जब तक कि उसमें मिलावट कर मिश्रित नकली सोना तैयार नहीं किया जाता।

'कस्सप! पृथ्वीधातु सद्धर्म को लुप्त नहीं करती; न आपोधातु, न तेजोधातु, और न वायुधातु। किंतु, यहीं वे मूर्ख लोग उत्पन्न होते हैं, जो सद्धर्म को लुप्त कर देते हैं। कस्सप! जैसे अधिक भार से नाव डूब जाती है वैसे ही मिलावट से सद्धर्म डूब जाता है।

'कस्सप! ऐसे पांच कारण हैं जिनसे सद्धर्म नष्ट होकर लुप्त हो जाता है।

'कौन से पांच?

(१) 'भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक तथा उपासिकायें बुद्ध के प्रति गौरव नहीं करतीं, आज्ञापरायण नहीं होतीं;

(२) "... धर्म के प्रति गौरव नहीं करतीं, आज्ञापरायण नहीं होतीं;

(३) "... संघ के प्रति गौरव नहीं करतीं, आज्ञापरायण नहीं होतीं;

(४) "... शिक्षा के प्रति गौरव नहीं करतीं, आज्ञापरायण नहीं होतीं;

(५) "... समाधि के प्रति गौरव नहीं करतीं, आज्ञापरायण नहीं होतीं।

"कस्सप! यही पांच कारण हैं जिनसे सद्धर्म नष्ट होकर लुप्त हो जाता है। ठीक इसके विपरीत यदि भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक तथा उपासिकायें बुद्ध, धर्म, संघ, शिक्षा तथा समाधि के प्रति गौरव करती हैं, उनके प्रति आज्ञापरायण होती हैं तो सद्धर्म टिका रहता है, क्षीण और लुप्त नहीं होता।"

–संयुत्तनिकाय १.२.१५६, सद्धम्मप्पतिरूपकसुत्त

महाकस्सप का बीमार पड़ना

एक समय भगवान राजगीर के वेळुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान महाकस्सप पिप्पली गुफा में बीमार पड़े थे। तब संध्या समय ध्यान से उठकर, भगवान आयुष्मान महाकस्सप के पास गये और बिछे आसन पर बैठ गये। भगवान महाकस्सप से बोले – "महाकस्सप! कहो, अच्छे तो हो? बीमारी घट तो रही है न?"

"नहीं भंते! मेरी तवियत अच्छी नहीं है। बीमारी घट नहीं रही है, वल्कि बढ़ती ही मालूम होती है।"

"कस्सप! मैंने ये सात बोज्झंग बताये हैं जिनकी भावना और अभ्यास से परम-ज्ञान और निर्वाण की प्राप्ति होती है। कौन-से सात?

"स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा। कस्सप! मैंने ये सात बोज्झंग बताये हैं। सात बोज्झंगों में धम्मानुपस्सी होकर इनका अभ्यास करो।"

महाकस्सप ने भगवान के कहे का अभिनंदन किया। बोज्झंगों की अनुपश्यना की और आयुष्मान महाकस्सप उस बीमारी से उठ खड़े हुए। उनकी बीमारी तुरंत दूर हो गयी।

–संयुत्तनिकाय ३.५.१९५, पठमगिलानसुत्त

धर्मोपदेश सुनने के लिए अयोग्य भिक्षु

एक समय भगवान ने राजगीर के वेळुवन में महाकस्सप से कहा – "कस्सप! भिक्षुओं को धर्मोपदेश दो।"

कस्सप ने कहा – "भंते! इस समय भिक्षु धर्म ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। वे उपदेश का सत्कार नहीं करेंगे। अभी मैंने आनन्द के अनुचर भण्ड तथा अनुरुद्ध के अनुचर अभिञ्जक को आपस में चर्चा करते हुए सुना है कि, "चलो, देखें, कौन आज ज्यादा देर तक अधिक और बढ़िया बोलता है।"

तब भगवान ने भण्ड तथा अभिञ्जक को बुलवाकर पूछा – "क्या मैंने तुम्हें ऐसा धर्म सिखाया है कि तुम आपस में ऐसी बातें करो कि कौन अधिक और बढ़िया बोलता है?"

भण्ड ने कहा – "नहीं, भंते!"

"भिक्षुओ! जब मैंने ऐसा नहीं सिखाया, तो सुआख्यात धर्म में प्रव्रजित होकर भी निकम्मी बातें क्यों करते हो?"

भिक्षुओं ने अपना दोष स्वीकार कर क्षमा-याचना की और वचन दिया कि भविष्य में ऐसा अपराध नहीं होगा। इस पर भगवान ने उन्हें क्षमा करते हुए कहा कि अपना दोष स्वीकार कर, भविष्य में सजग रहना यह आर्यविनय में वृद्धि ही है।

–संयुत्तनिकाय १.२.१४९, ओवादसुत्त

अनासक्त महाकस्सप

एक समय भगवान ने राजगीर में भिक्षुओं को बताया कि वर्षावास के पश्चात मैं यात्रा पर जाऊंगा। इस पर सभी भिक्षु भिक्षापात्र, चीवर आदि रंगवाकर यात्रा के लिए तैयार होने लगे।

महाकस्सप ने भी अपने चीवर तैयार किये। यह देख, भिक्षु आपस में चर्चा करने लगे कि थेर क्यों तैयारी कर रहे हैं? देखना, वे तो यात्रा पर नहीं जायेंगे। नगर के अंदर तथा बाहर जितनी प्रजा निवास करती है, उनमें से जो थेर के रिश्तेदार नहीं हैं, वे उनके सेवक हैं तथा जो सेवक नहीं हैं, वे

रिश्तेदार हैं। वे उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति आदर-सत्कार सहित करते हैं। यह सब छोड़कर वे क्यों जायेंगे? यदि चले भी तो 'माप्पमादकन्दरा' [वह गुफा जहां पर पहुँच कर शास्ता लौटने वाले भिक्षुओं को आदेश दिया करते थे कि तुम यहां से विहार लौट जाओ तथा प्रमाद मत करना] से अवश्य वापस आ जायेंगे।

शास्ता ने यात्रा प्रारंभ करते हुए सोचा, यदि सभी भिक्षु चलेंगे तो विहार खाली हो जायगा। नगर में कई मंगल-प्रसंगों पर भिक्षु की उपस्थिति आवश्यक होती है। अतः शास्ता ने महाकस्सप को विहार में वापस जाने को कहा।

इस पर भिक्षुगण टीका-टिप्पणी करने लगे कि देखा, हमने कहा था, थेर नहीं जायेंगे। वही हुआ। भिक्षुओं की चर्चा सुन शास्ता ने जानना चाहा, क्या बातचीत चल रही है? इस पर भिक्षुओं ने उन्हें पूरा वृत्तांत कह सुनाया।

भगवान ने कहा – "भिक्षुओ! ऐसा न कहो कि महाकस्सप कुलों, विहारों और आवश्यकताओं में आसक्त है। वह हर अवस्था में प्रज्ञायुक्त एवं निरासक्त ही रहता है। मेरा पुत्र, मेरे आदेश को पूर्ण करने मात्र के लिए ही वापस गया है। झील में उतरकर, वहां यथेच्छ विहार कर, वापस लौटने वाले राजहंस की भांति कहीं भी मेरा पुत्र आसक्त नहीं होता है।" अंत में भगवान ने यह गाथा कही –

"उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो, न निकेते रमन्ति ते।
हंसाव पल्ललं हित्वा, ओकमोकं जहन्ति ते॥"

– "स्मृतिमान विपश्यना ध्यान में लगे रहते हैं, वे आलय (निवास) में आनंदित नहीं होते हैं। जैसे हंस झील को छोड़कर जाता है, ऐसे ही वे सब प्रकार के आलयों (आसक्तियों) को छोड़ते हैं।"

–धम्मपद अट्ठकथा १.९१, महाकस्सपत्थेरवत्थु

एक ब्रह्मा की मिथ्या-दृष्टि का उन्मूलन

एक बार भगवान श्रावस्ती के जेतवन आराम में विहार करते थे। उस समय एक ब्रह्मा के मन में ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न हुई कि कोई भी श्रमण या ब्राह्मण ऐसा नहीं है जिसकी पहुँच उसके लोक तक हो।

उस ब्रह्मा के मन की बात भगवान ने अपने मन से जान ली। उसी समय अंतर्धान होकर वे ब्रह्मलोक जा पहुँचे और उस ब्रह्मा से ऊपर आकाश में पालथी मार कर बैठ गये। उसी समय आयुष्मान महामोग्गल्लान को यह जानने की इच्छा हुई कि शास्ता इस समय कहां विहार कर रहे हैं। जब उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा, तो पाया कि भगवान तो ब्रह्मलोक में एक ब्रह्मा से ऊपर आकाश में पालथी मारे विराजमान हैं। महास्थविर महामोग्गल्लान भी वहीं जा पहुँचे तथा भगवान से कुछ नीचे और उस ब्रह्मा से ऊपर, आकाश में भगवान के पूर्व की ओर बैठ गये। इसी बीच आयुष्मान महाकस्सप, आयुष्मान महाकप्पिन और आयुष्मान अनुरुद्ध के मन में भी भगवान के बारे में जिज्ञासा उठी। अपने ऋद्धिबल से भगवान की स्थिति जानकर, वे तीनों महास्थविर भी भगवान के पास जा पहुँचे और महामोग्गल्लान की ही तरह, भगवान से नीचे तथा उस ब्रह्मा से ऊपर, आकाश में पालथी मार कर बैठ गये। इस प्रकार चारों महास्थविर भगवान के चारों ओर – पूरब, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में – आकाश में विराजमान हो गये। यह सब देखकर ब्रह्मा हतप्रभ हो गये।

तब आयुष्मान महामोग्गल्लान ने उस ब्रह्मा से कहा, "आवुस! आज भी तुम्हारी वही मिथ्या धारणा है, जो धारणा पहले थी? देख रहे हो, सबसे बढ़े-चढ़े दिव्य लोक में इस महातेज को?"

"नहीं, भंते, अब मेरा दृष्टिकोण वह नहीं रहा। मैं ब्रह्मलोक की आभा समाप्त होते देख रहा हूं। अब कैसे कह सकता हूं कि मैं नित्य हूं, शाश्वत हूं, ध्रुव हूं, अमर हूं?"

इस प्रकार उस ब्रह्मा के मन में धर्म-संवेग जगाकर भगवान जेतवन लौट आये। अब उस ब्रह्मा ने ब्रह्मपरिषद के एक सदस्य को बुलाकर उससे कहा कि वह जाकर यह जानकारी करे कि क्या महामोग्गल्लान, महाकस्सप,

महाकप्पिन तथा अनुरुद्ध जैसे महाऋद्धिशाली श्रावक भगवान के संघ में और भी हैं? वांछित जानकारी प्राप्त करने के पश्चात उस पार्षद ने उस ब्रह्मा को बताया कि ऐसे महाऋद्धिशाली श्रावक अनेक हैं। इससे संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उनके कहे का अभिनंदन किया।

–संयुत्तनिकाय १.१.१७६, अञ्ञतरब्रह्मसुत्त

'ब्राह्मण' का 'साधना' से मेल

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के जेतवन विहार में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त, महामोग्गल्लान, महाकस्सप, महाकच्चान, महाकोट्ठिक, महाकप्पिन, महाचुन्द, अनुरुद्ध, रेवत एवं आयुष्मान नन्द भगवान के पास आ रहे थे।

भगवान ने उन आयुष्मानों को वहां आते हुए दूर से ही देख लिया। उन्हें देखते ही वे भिक्षुओं से बोले – "भिक्षुओ! ये ब्राह्मण चले आ रहे हैं!"

भगवान के ये वचन सुनकर वहां श्रोताओं में बैठा कोई ब्राह्मण जाति से प्रव्रजित भिक्षु उत्सुकतावश भगवान से यह प्रश्न पूछ बैठा – "भंते! किन गुणों के कारण कोई ब्राह्मण कहलाता है?" अथवा "ब्राह्मणकारक धर्म कौन से होते हैं?"

तब भगवान ने उस अवसर पर प्रश्न की गंभीरता को समझते हुए यह उदान कहा –

"बाहित्वा पापके धम्मे, ये चरन्ति सदा सता।
खीणसंयोजना बुद्धा, ते वे लोकस्मि ब्राह्मणा॥"

– "पापमय अकुशल धर्मों को दूर हटाकर, जो सदा स्मृतिमान रहते हैं, संयोजनों के कट जाने से जो बुद्ध हो गये हैं, वे ही ब्राह्मण कहे जाते हैं।

–उदान १.५, ब्राह्मणसुत्त

****

ध्यान-अभिज्ञा में बुद्ध से समानता

भगवान ने महाकस्सप के बारे में कहा था –

"भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब मनोनुकूल ध्यानावस्था को प्राप्त कर सकता हूं। कस्सप भी ऐसा ही कर सकता है।

(१) "भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब, कामों को त्याग कर, अकुशल धर्मों को त्याग कर, सवितर्क सविचार विवेकज प्रीति-सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं। कस्सप भी जब चाहता है, प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है।

(२) "भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब, वितर्क विचार के शांत हो जाने से अध्यात्म-संप्रसाद, चित्त की एकाग्रता से युक्त, समाधिज प्रीति-सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं। कस्सप भी जब चाहता है, द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है।

(३) "भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब, प्रीति के हट जाने से उपेक्षा के साथ विहार करता हूं, स्मृतिमान और संप्रज्ञ हो काया से सुख का अनुभव करते हुए – जिसे आर्य पुरुष कहते हैं कि उपेक्षा के साथ स्मृतिमान हो सुख से विहार करता है – इस तीसरे ध्यान को प्राप्त कर सुख से विहार करता हूं। कस्सप भी जब चाहता है, तीसरे ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है।

(४) "भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब, सुख और दुःख के प्रहाण से, सौमनस्य और दौर्मनस्य के पूर्व में ही अस्त हो जाने से, अदुःख, असुख, उपेक्षा से स्मृति-पारिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं। कस्सप भी जब चाहता है, चौथे ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है।

(५) "भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब, सर्वथा रूप संज्ञाओं के समतिक्रमण से, प्रतिघ संज्ञाओं के अस्त हो जाने से, नानात्व संज्ञाओं के अमनसिकार से, आकाश अनंत है – ऐसा आकासानञ्चायतन को प्राप्त कर विहार करता हूं। कस्सप भी जब चाहता है, इसे प्राप्त कर विहार करता है।

(६) "भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब सर्वथा आकासानञ्चायतन का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनंत है' – ऐसा विञ्ञाणञ्चायतन को प्राप्त कर विहार करता हूं। कस्सप भी जब चाहता है, इसे प्राप्त कर विहार करता है।

(७) "भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब सर्वथा विञ्ञाणञ्चायतन का समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' ऐसा आकिञ्चञ्ञायतन को प्राप्त कर विहार करता हूं। कस्सप भी जब चाहता है, इसे प्राप्त कर विहार करता है।

(८) "भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब सर्वथा आकिञ्चञ्ञायतन का समतिक्रमण कर नेवसञ्ञानासञ्ञायतन को प्राप्त कर विहार करता हूं। कस्सप भी जब चाहता है, इसे प्राप्त कर विहार करता है।

(९) "भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब सर्वथा नेवसञ्ञानासञ्ञायतन का समतिक्रमण कर सञ्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त कर विहार करता हूं। कस्सप भी जब चाहता है, इसे प्राप्त कर विहार करता है।

(१०) "भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूं तब अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूं। कस्सप भी जब चाहता है, तब इन्हें प्राप्त कर विहार करता है।

(११) "भिक्षुओ! मैं आस्रवों के क्षीण हो जाने से, आस्रवरहित चेतोविमुक्ति और पञ्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात कर और प्राप्त कर विहार करता हूं।

"कस्सप भी ऐसे ही विहार करता है।"

–संयुतनिकाय १.२.१५२, झानाभिञ्ञसुत

****

विविध प्रकरण

महाकस्सप एवं सारिपुत्त के संवाद

एक समय आयुष्मान महाकस्सप और आयुष्मान सारिपुत्त वाराणसी के पास, इसिपतन मिगदाय में विहार करते थे। आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकस्सप से पूछा – "आयुष्मान, क्या यह सही है कि अनातापी (जो अपने क्लेशों को नहीं तपाता) और अनोत्तापी (जो क्लेशों के उठने पर सावधान नहीं रहता) निर्वाण को नहीं पा सकता? केवल आतापी एवं ओत्तापी ही परमपद को प्राप्त कर सकता है?"

"हां, आयुष्मान, यह सही है। अनुत्पन्न पाप एवं अकुशल धर्म उत्पन्न होकर, उत्पन्न पाप एवं अकुशल धर्म प्रहीण नहीं होने से, अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न नहीं होने से तथा उत्पन्न कुशल धर्म नष्ट होने से, अनिष्ट करते हैं। इसलिए साधक को सदा आतापी (अपने क्लेशों को तपाते रहने वाला) तथा ओत्तापी (क्लेशों के उत्पन्न होने पर सजग रहने वाला) होना चाहिए। तभी वह निर्वाण तक पहुँच सकता है।"

–संयुतनिकाय १.२.१४५, अनोत्तप्पीसुत

अव्याकृत

एक समय आयुष्मान महाकस्सप और आयुष्मान सारिपुत्त वाराणसी के पास इसिपतन मिगदाय में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान सारिपुत्त सांझ को ध्यान से उठकर, आयुष्मान महाकस्सप के पास गये, और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकस्सप से कहा – "आयुष्मान कस्सप! क्या जीव मरने के बाद रहता है?"

"आयुष्मान! भगवान ने ऐसा नहीं बताया है कि जीव मरने के बाद रहता है।"

"आयुष्मान! तो क्या जीव मरने के बाद नहीं रहता?"

"आयुष्मान! भगवान ने ऐसा भी नहीं बताया है कि जीव मरने के बाद नहीं रहता है।"

"आयुष्मान! भगवान ने इसे क्यों नहीं बताया है?"

"आयुष्मान! क्योंकि, यह न तो परमार्थ के लिए है, न ब्रह्मचर्य का साधक है, न निर्वेद के लिए है, न विराग के लिए है, न निरोध के लिए है, न शांति के लिए है, न ज्ञान के लिए है, न संबोधि के लिए है, और न निर्वाण के लिए है। इसलिए भगवान ने इसे नहीं बताया है।"

"आयुष्मान! तो भगवान ने क्या बताया है?"

"आयुष्मान! यह दुःख है – ऐसा भगवान ने बताया है। यह दुःख का समुदय है; यह दुःख का निरोध है तथा यह दुःखनिरोध का उपाय है। पांच उपादान-स्कंध ही दुःख हैं। तृष्णा दुःख का समुदय है। तृष्णा का सर्वथा निरोध, दुःख का निरोध है और आर्य अष्टांगिक मार्ग ही दुःख-निरोध का उपाय है।"

"आयुष्मान! भगवान ने इसे क्यों बताया है?"

"आयुष्मान! क्योंकि यही परमार्थ का साधक है, ब्रह्मचर्य का साधक है, निर्वेद के लिए है, निर्वाण के लिए है। इसलिए भगवान ने इसे बताया है।"

–संयुत्तनिकाय १.२.१५५, परम्परणसुत्त

अयोग्य सेवक

एक समय स्थविर महाकस्सप पिप्फली गुफा में निवास करते थे। तब उनकी सेवा में दो ब्रह्मचारी थे। इन दोनों में से एक भली प्रकार से सेवा करता था, तो दूसरा पहले वाले के द्वारा किये गये कार्य को अपने द्वारा किया गया बताता था। एक उनको स्नान आदि के लिए पानी देता, उनकी कुटिया को स्वच्छ रखता एवं उनकी आवश्यकता की वस्तुएं समय पर

उपलब्ध कराता। दूसरा आयुष्मान महाकस्सप के सम्मुख ऐसे प्रकट करता मानों सारे कार्य वही कर रहा हो। पहले सेवक ने जब देखा कि प्रतिदिन यही हो रहा है, तब उसने दूसरे का कृत्य महाकस्सप के समक्ष प्रकट करने की सोचा। चूल्हे पर गरम पानी का पात्र जब पूरी तरह गर्म हो गया तब उसे खाली कर, उसने मात्र थोड़ा ही, भाप छोड़ता हुआ पानी तले में छोड़ दिया। दूसरे ने भाप उठती देखकर यह समझा कि पानी गर्म है ही। उसने स्थविर को सूचना दी – "भंते! स्नान के लिए गर्म जल तैयार है।" स्थविर ने आकर देखा – पात्र खाली है। तो पूछा – "कहां है गर्म जल?" वह सकपका गया और पहले सेवक के लिए अपशब्द कहता हुआ पानी लेने चला गया। तभी पहले सेवक ने आकर अपने द्वारा किया गया गर्म पानी लाकर स्थविर को दिया। महाकस्सप समझ गये कि दूसरा प्रतिदिन पहले सेवक के किये गये कार्य को अपना किया गया बताता था।

संध्याकाल में महाकस्सप ने दूसरे को उपदेश दिया कि प्रव्रजित के लिए यह करणीय नहीं है, कि वह दूसरे के द्वारा किये गये कार्य को अपना बताये। उसको यह सुनकर क्रोध आया। वह दूसरे दिन महाकस्सप तथा पहले सेवक के साथ भिक्षाटन पर नहीं गया। एक कुटुंब में जाकर कहा – "स्थविर अस्वस्थ हैं, उनके लिए आहार दें।" कुटुंब ने वैसा किया। वह आहार दूसरे सेवक ने खुद खा लिया। कुटुंब से एक व्यक्ति स्थविर का स्वास्थ्य जानने के लिए आया और पूछा, "भंते! आप स्वस्थ तो हैं? आहार आपके अनुकूल रहा?"

महाकस्सप ने पुनः दूसरे को समझाया कि प्रव्रजित को इस प्रकार झूठमूठ मांगकर नहीं खाना चाहिए। यह तुमने ठीक नहीं किया है। उसके सिर पर प्रचंड ईर्ष्या व क्रोध का भूत सवार हो गया। वह बोल उठा – "सब कायदे-कानून मेरे लिए ही हैं। कल गर्म जल के कारण और आज भिक्षा के कारण मैं प्रताड़ित किया गया। भेंट में मिले नये वस्त्र भी पहले सेवक को दिये गये। अहा! स्थविर पापी है।" उसने कुटिया में तोड़फोड़ कर दी तथा आग लगाकर भाग गया।

यह चर्चा जब भगवान के कानों में पड़ी तब वे बोले – "वह आज ही नहीं, पहले भी उपदेश सुन क्रुद्ध हुआ था। पूर्व में भी उसने ऐसा ही किया

था।" यह कह भगवान ने जातक द्वारा दूसरे के पूर्वजन्म के ऐसे ही एक कृत्य को उजागर किया।

अतीत काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, हिमवंत प्रदेश में सिंगिल पक्षी घोंसला बना कर वास करता था। एक दिन बारिश के समय, एक बंदर ठंड से कांपता हुआ उस प्रदेश में आया। सिंगिल ने उसे देखकर यह गाथा कही –

"हे बंदर, तेरा सिर और हाथ-पैर मनुष्य के जैसे हैं। तो तेरा घर क्यों नहीं है?"

"यद्यपि मेरे हाथ-पैर हैं, जिस प्रज्ञापूर्वक चिंतन-मनन से घर बने, वह प्रज्ञा मुझमें नहीं है।" ऐसा सोच, बंदर ने यह गाथा कही –

"सिंगिल! मनुष्य के जैसे मेरा सिर और हाथ-पैर हैं। लेकिन मनुष्यों में जो श्रेष्ठ चीज है – 'प्रज्ञा', वह मुझमें नहीं है।"

तब उसे "ऐसे स्वरूप वाले तुझको गृहवास कैसे प्राप्त होगा", ऐसा उलाहना देते हुए सिंगिल ने यह गाथा कही –

"अस्थिर चित्त वाले को, लघु चित्त वाले को, मित्रद्रोही को, हमेशा अध्रुवचित्तयुक्त को, सुखभाव नहीं होता है।

"हे कपि, अपनी दक्षता बढ़ाओ, शील का पालन करो, शीत हवा के निवारण के लिए कुटी बनाओ।"

"यह मुझे अस्थिर चित्त वाला, लघु चित्त वाला, दोस्त के साथ द्रोह करने वाला, अध्रुव शीलवाला कहता है। अभी इसे मित्र-द्रोह दिखाऊँगा।" यह सोचकर बंदर ने सिंगिल पक्षी के घोंसले को विध्वस्त करके फेंक दिया। पक्षी बंदर द्वारा घोंसले को पकड़ते ही एक ओर से निकल कर भाग गये।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को लाकर जातक से मेल मिलाया – "तब बंदर कुटी-नाशक भिक्षु था और सिंगिल पक्षी 'कस्सप' था।

'इस तरह उसने सिर्फ अभी ही नहीं, पहले भी उपदेश देने पर क्रोध करके कुटिया को नष्ट किया था। मेरे पुत्र कस्सप को इस तरह के मूर्ख के साथ रहने के बदले, अकेला रहना ही भला है।" यह कह कर भगवान ने निम्नलिखित गाथा कही –

"चरञ्चे नाधिगच्छेय्य, सेय्यं सदिसमत्तनो।
एकचरियं दळ्हं कयिरा, नत्थि बाले सहायता॥"

– "(आध्यात्मिक जीवन पथ पर) चलते समय, अपने से श्रेष्ठ अथवा अपने समान न मिले तो, अकेला ही दृढ़ता से चले। मूर्ख से सहायता न ले।"

–धम्मपद अट्ठकथा १.६१, महाकस्सपत्थेरसद्धिविहारिकवत्थु

शिष्य सोममित्त

सोममित्त बनारस के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए। वेदों में पारंगत थे। विमल थेर से उपदेश सुनकर प्रव्रजित हुए। विमल थेर प्रमादी थे। अतएव सोममित्त उन्हें छोड़कर आयुष्मान महाकस्सप के निर्देशन में ध्यान-भावना कर, परम पद को प्राप्त हुए। तत्पश्चात उपदेश द्वारा विमल थेर को भी सचेत किया –

"परित्तं दारुमारुय्ह, यथा सीदे महण्णवे।
एवं कुसीतमागम्म, साधुजीवीपि सीदति।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, कुसीतं हीनवीरियं॥

"पविवित्तेहि अरियेहि, पहितत्तेहि झायिभि।
निच्चं आरद्धवीरियेहि, पण्डितेहि सहावसे"ति॥"

"जिस प्रकार छोटे तख्ते पर चढ़ने से (मनुष्य) समुद्र में डूब जाता है, उसी प्रकार आलसी की संगत में आकर सज्जन व्यक्ति भी डूब जाता है। अतः आलसी, अनुद्योगी को त्याग दे।

"जो एकांतवासी हैं, निर्वाण में रत हैं, ध्यानी हैं, नित्य उद्योग करने वाले हैं, वैसे पंडित आर्यों की संगत करें।"

–थेरगाथा अट्ठकथा १.१४७-१४८, सोममित्तत्थेरगाथावण्णना

सक्क द्वारा भिक्षादान

एक समय आयुष्मान महाकस्सप पिप्पली गुफा में विहार कर रहे थे। वे सप्ताह भर एक आसन पर समाधि लगाये बैठे थे। उस सप्ताह के बीतने पर आयुष्मान महाकस्सप समाधि से उठे। समाधि से उठने पर आयुष्मान महाकस्सप राजगीर में भिक्षा के लिए निकले। पांच सौ देवताओं तथा देवराज सक्क की पांच सौ सेविकाओं ने स्थविर महाकस्सप को भिक्षा देनी चाही। स्थविर ने कहा – "तुम जाओ, मैं गरीबों पर कृपा करूंगा।" तब सक्कदेव जराजीर्ण वृद्ध जुलाहे का रूप धारण कर उनके मार्ग में खड़ा हो गया। आयुष्मान महाकस्सप के भिक्षापात्र को तरह-तरह के सुस्वादु खाद्य पदार्थों से भर दिया। कस्सप जान गये कि यह सक्कदेव है। आयुष्मान महाकस्सप ने सक्क से कहा – "जो कर चुका, सो ठीक; परंतु आगे से ऐसा न करना। वंचना कर दान मत देना।" सक्क बोला – "भंते! मैं भी पुण्य कमाना चाहता हूं।" फिर प्रणाम और प्रदक्षिणा कर तीन बार उच्चारा – "अरे! महाकस्सप को दिया गया दान कितने महत्त्व का है! कितना सुखदायी है!"

भगवान ने अलौकिक विशुद्ध दिव्य श्रोत्र से देवेंद्र सक्क के उदान को सुना। इसे जान, उस समय भगवान के मुँह से उदान के ये वचन निकल पड़े –

– "शांत, शीलवान और स्मृतिमान भिक्षु को देख देवता भी प्रसन्न होते हैं, उसे चाहते हैं। शीलवान की सुगंध का क्या कहना? चंदन भी उसके आगे तुच्छ है।"–

–धम्मपद अट्ठकथा १.५६, महाकस्सपत्थेरपिण्डपातदिन्नवत्थु

विभ्रांत भिक्षु

महाकस्सप का एक शिष्य साधना में खूब पका हुआ था। चौथे ध्यान तक की समापत्तियों को प्राप्त कर चुका था। एक बार अपने मामा के घर में कोई घटना देख उसमें आसक्ति जगी और उसने भिक्षु जीवन त्याग दिया। अकर्मण्यता के कारण उसे घर से निकाल दिया गया। बुरी संगत में पड़कर वह चोरी इत्यादि कुकर्म करने लगा और एक दिन पकड़ा गया। राजसैनिक

उसे जंजीरों से बांध, चाबुक मारते हुए, वधस्थल की ओर ले जा रहे थे। महाकस्सप ने देखा तो उसके बंधन कुछ शिथिल करवाये तथा कहा – "अपने परिचित कर्मस्थान पर फिर ध्यान कर।"

इससे वह पुनः चतुर्थ ध्यान की स्थिति तक जा पहुँचा। अब उसे सैनिकों या उनके हथियारों से भय जाता रहा। अडोल, निर्भय तथा शांत चित्त से वह खड़ा हो गया।

यह सब वृत्तांत जानकर राजा ने उसे बंधन-मुक्त करने को कहा। भगवान को जब यह घटना ज्ञात हुई तब उन्होंने उसे धर्मदेशना दी –

यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो, वनमुत्तो वनमेव धावति।
तं पुग्गलमेथ पस्सथ, मुत्तो बन्धनमेव धावति॥

जो तृष्णा से छूटकर, तृष्णामुक्त हो, तृष्णा की ओर ही दौड़ता है, उस व्यक्ति को वैसे ही जानो जैसे कोई बंधन से मुक्त पुरुष फिर बंधन की ओर ही भागता है ।

तलवार-भालों से घिरा होकर और मृत्यु को आसन्न पाकर भी समताभरे चित्त से, यह देशना सुन कर उसने अंतर्मुखी हो, संस्कारों के उदय-व्यय को जान कर, अपूर्व समापत्ति (ध्यान) सुख का अनुभव करते हुए, राजा की उपस्थिति में ही अर्हत्व-लाभ किया।

–धम्मपद अट्ठकथा २.३४४, विब्भन्तभिक्खुवत्थु

भिक्षुणी थुल्लतिस्सा का संघ से बहिष्कार

एक समय आयुष्मान महाकस्सप श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब आनन्द पूर्वाह्न समय चीवर पहन और पात्र-चीवर ले आयुष्मान महाकस्सप के पास गये। वहां जाकर उनसे कहा – "भंते! जहां भिक्षुणियों का स्थान है, वहां चलें।"

महाकस्सप ने कहा – "आयुष्मान आनन्द! आप जायें, आपको बहुत काम-धाम रहता है।"

इसी प्रकार दूसरी तथा तीसरी बार आग्रह करने पर आयुष्मान महाकस्सप चीवर पहन और पात्र-चीवर ले आयुष्मान आनन्द को पीछे लिये भिक्षुणियों के स्थान पर गये। जाकर बिछे आसन पर बैठ गये।

तब, कुछ भिक्षुणियां आयुष्मान महाकस्सप के समक्ष गयीं, जाकर उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गयीं। एक ओर बैठी हुयी उन भिक्षुणियों को आयुष्मान महाकस्सप ने धर्मोपदेश दिया। आयुष्मान आनन्द की एक प्रशंसिक । भिक्षुणी थुल्लतिस्सा को यह अच्छा नहीं लगा। उसने एक अन्य भिक्षुणी से कहा– "क्या आर्य महाकस्सप का आर्य वेदेहमुनि आनन्द के सामने धर्मोपदेश करना उचित था? जैसे, कोई सूई बेचने वाला, किसी सूई बनाने वाले के पास सूई बेचने जाय; वैसे ही आर्य महाकस्सप ने आर्य आनन्द के सामने धर्मोपदेश करने का साहस किया है।"

आयुष्मान महाकस्सप ने थुल्लतिस्सा भिक्षुणी को यह कहते सुन आयुष्मान आनन्द से पूछा – "क्या मैं सूई बेचने वाला हूं और आप सूई बनाने वाले?"

आयुष्मान आनन्द ने कहा – "भंते! मूर्खा है, कृपया इसे क्षमा करें।"

इस पर आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान आनन्द से कहा– "देखें, संघ आपके विषय में और चर्चा न करे।"

थुल्लतिस्सा भिक्षुणी धर्म से च्युत हो गयी।

–संयुतनिकाय १.२.१५३, उपस्सयसुत

भिक्षुणी थुल्लनन्दा का संघ से बहिष्कार

एक समय आयुष्मान महाकस्सप राजगीर के वेळुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान आनन्द दक्खिणगिरि में भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ चारिका कर रहे थे। उस समय आयुष्मान आनन्द के तीस अनुचर भिक्षु, जो विशेषकर कुमार थे, शिक्षा को छोड़ कर गृहस्थ हो गये। इस पर आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान आनन्द को सचेत किया – "आयुष्मान! क्यों आप इन नये भिक्षुओं के साथ चारिका करते हैं जो असंयमी, पेटू और सुतक्कड़ हैं? लगता है आप शस्य (धान के पौधों) और कुलों को नष्ट करते हुए विचरते हैं। आप की नयी मंडली घट रही है। ये नये कुमार मात्रा को नहीं जानते हैं।"

यह सुनकर आनन्द ने कहा – "भंते! मेरे बाल भी पक चुके, किंतु आज तक आयुष्मान महाकस्सप द्वारा 'कुमार' द्वारा ही संबोधित किया जा रहा हूं।"

इस पर महाकस्सप ने फिर दोहराया – "तभी तो मैं कहता हूं आप क्यों इन नये भिक्षुओं के साथ चारिका करते हैं, जो असंयमी, पेटू और सुतक्कड़ हैं? लगता है आप.....।"

भिक्षुणी थुल्लनन्दा ने सुन लिया कि आयुष्मान महाकस्सप ने आर्य आनन्द को 'कुमार' कहकर धत्ता बताया है। तब उससे नहीं रहा गया और वह भभक उठी – "आयुष्मान महाकस्सप जो पहले अन्य-तैर्थिक रह चुके हैं, आर्य आनन्द को 'कुमार' कहकर धत्ता बताने का साहस कैसे कर सकते हैं?"

जब आयुष्मान महाकस्सप ने भिक्षुणी को यह कहते हुए सुना तब वे आनन्द से बोले – "भिक्षुणी का ऐसा कहना उचित नहीं है। जब से मैं सिर-दाढ़ी मुँड़वाकर कषाय वस्त्र पहन घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूं तब से मैंने सम्यक संबुद्ध को छोड़कर किसी दूसरे को अपना शास्ता नहीं माना है। राजगीर और नालंदा के बीच एक चैत्य पर भगवान को बैठे देखकर मेरे मन में हुआ कि यदि मैं किसी शास्ता को देखूं तो सम्यक संबुद्ध को ही देखूं। मैंने वहीं पर भगवान के चरणों पर गिरकर कहा – 'आप मेरे शास्ता हैं, मैं आपका श्रावक हूं।' तब भगवान ने मुझे धर्मोपदेश दिया और अंत में कहा कि तुम्हें ऐसा सीखना चाहिए कि 'कायगतास्मृति' मुझसे कभी छूटने न पाय। यह उपदेश देकर भगवान आसन से उठकर चले गये। इससे आठवें दिन मुझे दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया। मैं तब से आस्रवों के क्षीण हो जाने से आस्रवरहित चेतोविमुक्ति और पञ्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार कर रहा हूं।"

तब थुल्लनन्दा भिक्षुणी आयुष्मान महाकस्सप पर मिथ्या दोष लगाने के कारण धर्म से च्युत हो गयी।

–संयुतनिकाय १.२.१५४, चीवरसुत

महाकस्सप द्वारा प्रथम संगीति का आयोजन

भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण

एक समय आयुष्मान महाकस्सप पांच सौ भिक्षुओं के महाभिक्षुसंघ के साथ पावा और कुसीनारा के बीच रास्ते में थे। तब आयुष्मान महाकस्सप मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे बैठे। तभी एक आजीवक कुसीनारा से मंदार का पुष्प ले, पावा के रास्ते पर जा रहा था। आयुष्मान महाकस्सप ने उस आजीवक को दूर से आते देखा। देखकर उस आजीवक से यह कहा – "आवुस! क्या तुम हमारे शास्ता को जानते हो?"

"हां, आयुष्मान! जानता हूं; श्रमण गौतम को परिनिर्वृत्त हुए आज एक सप्ताह हो गया है; मैंने यह मंदार पुष्प वहीं से पाया है।"

तब वहां पर जो अवीतराग भिक्षु थे, उनमें से कोई-कोई बांह पकड़कर रोते, कटे पेड़ के समान धराशायी होते और कहते 'भगवान बहुत जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।' किंतु जो वीतराग भिक्षु थे वे सति-सम्पजञ्ञ के साथ अपने आपको संभाले रहे। वे समझते थे कि सभी संस्कार (=कृत पदार्थ) नाशवान, अनित्य होते हैं।

उसी परिषद में एक वृद्ध भिक्षु सुभद्द भी बैठा था। वह भगवान के परिनिर्वाण के बारे में सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुआ तथा शोकाकुल भिक्षुओं को कहने लगा – "भिक्षुओ! हम मुक्त हो गये। शोक मत करो, रोओ मत। उस महाश्रमण से हम सब दुःखी थे। यह करो, वह मत करो। यह उचित है, यह अनुचित है। गृहस्थों के लिए पांच शील और गृहत्यागियों के लिए दो सौ शील! क्या इसलिए गृहस्थ प्रव्रजित होता है? अब हम मनचाहा करेंगे, अनचाहा नहीं करेंगे।"

तभी आयुष्मान महाकस्सप ने भिक्षुओं को आमंत्रित कर कहा – "आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। भगवान ने तो यह पहले ही कह दिया था – सभी प्रियों से जुदाई होनी है। 'हाय, वह नष्ट नहीं हो,' यह संभव नहीं है।"

उस समय चार मल्ल-प्रमुख शिर से नहाकर, नये वस्त्र पहन, भगवान की चिता को आग देना (जलाना) चाहते थे, किंतु नहीं दे (जला) सके। तब कुसीनारा के मल्लों ने आयुष्मान अनुरुद्ध से पूछा – "भंते! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे कि चार मल्ल-प्रमुख भगवान की चिता को नहीं जला सके?"

"वासेट्ठो! देवताओं का दूसरा ही अभिप्राय है। आयुष्मान महाकस्सप पांच सौ भिक्षुओं के महाभिक्षुसंघ के साथ पावा और कुसीनारा के बीच रास्ते में आ रहे हैं। भगवान की चिता तब तक नहीं जलेगी जब तक आयुष्मान महाकस्सप भगवान के चरणों की अपने शिर से स्वयं वंदना न कर लेंगे।"

"भंते! जैसा देवताओं का अभिप्राय है, वैसा ही हो।"

तब आयुष्मान महाकस्सप ने मल्लों के मुकुटबन्धन नामक चैत्य के पास जहां भगवान की चिता थी, वहां पहुँचकर, चीवर को एक कंधे पर कर अंजलिबद्ध, तीन बार चिता की परिक्रमा कर, बुद्ध के ढंके चरण को निकालकर, शिर से वंदना की। उन पांच सौ भिक्षुओं ने भी एक कंधे पर चीवर कर, हाथ जोड़कर तीन बार चिता की प्रदक्षिणा कर, भगवान के चरणों में शिर से वंदना की।

आयुष्मान महाकस्सप और उन पांच सौ भिक्षुओं के वंदना कर लेते ही, भगवान की चिता स्वयं दहक उठी।

कुसीनारा के मल्लों ने सर्व-गंध मिश्रित जल से भगवान की चिता को ठंडा किया। भगवान की अस्थियों को सप्ताहभर संस्थागार में रखकर उनका सत्कार किया।

सुभद्द की वाणी से महाकस्सप का हृदय दहल उठा था। अभी परिनिर्वाण हुआ ही है और इस तरह की बातें प्रारंभ हो गयी हैं। यदि मैं सुभद्द को प्रताड़ित करूं तो यह बात फैलेगी कि भगवान का शरीर नहीं रहा तो भिक्षु आपस में कलह करने लगे। भगवान द्वारा देशित धर्म असंग्रहीत है। समय बीतने पर नासमझ, अपरिपक्व तथा स्वार्थी लोग उनकी शिक्षा में से अपना अनचाहा निकाल देंगे, उसमें मनचाहा जोड़ देंगे। धर्म दूषित हो जायगा। लोक-कल्याण का मार्ग अवरुद्ध हो जायगा। मैं भगवान का अग्र

शिष्य हूं। भगवान ने तीन गव्यूति तक स्वयं आकर मुझे उपदेश दिया था। भगवान ने अपने धारण किये हुए चीवर मुझे देकर, मेरे चीवर धारण किये थे। मुझे यह अनमोल विद्या दी। समय-समय पर अपने महत्त्वपूर्ण दायित्व मुझे सौंपते रहे। मेरे लिए अब यह आदेश ही है जैसा कि भगवान ने कहा था – "जिन धर्मों को तुम्हारे लिए मैंने स्वयं अभिज्ञात करके उपदेशित किया है, उन्हें अर्थ और व्यंजन सहित सब मिल-जुल कर, बिना विवाद किये संगायन करो, जिससे कि यह धर्माचरण चिरस्थायी हो।"

–दीघनिकाय २.२३१, महाकस्सपत्थेरवत्थु

आयुष्मान आनन्द को प्रथम-संगीति में शामिल करना

सुदूरदर्शी महाकस्सप ने भिक्षुसंघ के समक्ष तत्काल यह निर्णय लिया कि लोककल्याणार्थ बुद्धवाणी को चिरकाल तक अविकल रूप में सुरक्षित रखने के लिए शीघ्र ही संगायन का आयोजन किया जाय। पांच सौ सत्यसाक्षी महास्थविर इसमें सम्मिलित होंगे जिन्होंने भगवान की वाणी को सुना, समझा, पारायण किया; पालन किया और जीवन में उतारा और मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए हैं। पांच सौ भिक्षुओं की सूची तैयार होने लगी। सुझाव आया कि इसमें भिक्षु आनन्द को शामिल किया जाय जो भगवान के चचेरे भाई थे और पच्चीस वर्षों तक छाया की तरह उनके साथ रहे। उन्हें भगवान की एक-एक शिक्षा कंठस्थ है। भगवान का आनन्द से कथन था कि यदि आनन्द उनके साथ धर्मसभा में नहीं होगा तो वे आकर उस उपदेश को वैसे-का-वैसा आनन्द को सुनायेंगे। महाकस्सप ने आपत्ति की, यह जानते हुए भी कि आनन्द सभी प्रकार से सुपात्र हैं, फिर भी अभी अरहंत नहीं हैं। कल को यह विवाद न उठ खड़ा हो कि तथागत का भाई तथा महाकस्सप का प्रिय होने के नाते आनन्द को अरहंत न होते हुए भी चुना गया। उन्होंने कहा – आनन्द अभी अरहंत नहीं हुए। संगायन में सभी अरहंत ही होने चाहिए।

आनन्द को तपने का समय दिया गया। निश्चित अवधि तक यदि अरहंत अवस्था को प्राप्त करते हैं तो ठीक, अन्यथा किसी अन्य अरहंत को लेकर संगायन प्रारंभ कर देंगे। अब समय पूर्व ही आनन्द अरहंत हुए। जब

तक वे अरहंत नहीं हुए तब तक कुछ भिक्षु, उनके बारे में यह कहते हुए सुने जाते थे कि "इस भिक्षुसंघ में एक भिक्षु कच्चे मांस की-सी गंध फैलाता हुआ चलता-फिरता है।" आनन्द के अरहंत हो जाने पर महाकस्सप ने सोचा, भगवान होते तो अवश्य आनन्द का साधुकार करते। महाकस्सप ने आनन्द का साधुकार किया, अन्यों ने उनका अनुमोदन किया।

यह तय हुआ कि राजगीर में वर्षावास के दौरान संगायन होगा। केवल संगायन में शामिल भिक्षु ही वहां उपस्थित होंगे, अन्य नहीं। महाकस्सप ने भिक्षुओं को चालीस दिन का अवकाश दिया जिससे जो भी बाधा, कठिनाई हो उसे दूर कर, वे संगायन के लिए उपस्थित हों। यह निर्णय भगवान के परिनिर्वाण के इक्कीस दिन पश्चात लिया गया तथा तीन माह के भीतर ही संगायन प्रारंभ हुआ।

प्रथम संगीति की कार्यवाही

आयुष्मान आनन्द सहित पांच सौ अरहंत भिक्षुओं के साथ महाकस्सप थेर ने प्रथम संगीति की कार्यवाही आरंभ की। आयुष्मान महाकस्सप ने भिक्षुओं से कहा – "आवुसो! पहले किसका संगायन करेंगे, धर्म का या विनय का?"

भिक्षुओं ने कहा – "भंते, महाकस्सप, विनय बुद्धशासन की आयु है। विनय का स्थिर होना, मतलब शासन भी स्थिर हुआ। इसलिए पहले विनय का संगायन करेंगे।"

"किसे धुर (जिम्मेदार) करके?"

"आयुष्मान उपालि को।"

"क्या आनन्द पर्याप्त नहीं हैं?"

"ऐसा नहीं है कि वे पर्याप्त नहीं हैं।"

सम्यक संबुद्ध के जीवनकाल में ही विनयपरियत्ति के बारे में "भिक्षुओ! मेरे भिक्षु श्रावक विनयधरों में सब से अग्र है उपालि' ऐसा कहकर भगवान ने आयुष्मान उपालि को अग्रस्थान पर रखा था। इसलिए उपालि थेर को पूछ कर विनय का संगायन करेंगे।"

विनयधर उपालि से विनय पूछना

आयुष्मान महाकस्सप ने संघ को ज्ञापित किया – "आवुसो! संघ सुने। यदि संघ को पसंद हो तो मैं आयुष्मान उपालि से विनय पूछूं?"

आयुष्मान उपालि ने भी संघ को ज्ञापित किया – "भंते! संघ सुने। यदि संघ को पसंद हो, तो मैं आयुष्मान महाकस्सप द्वारा पूछे गये विनय का उत्तर दूं?"

संघ ने मौन रह कर स्वीकृति दी। तब आयुष्मान उपालि अपने आसन से उठ कर, चीवर को एक कंधे पर रख, थेर भिक्षुओं को नमस्कार कर, धर्मासन पर जा बैठे। तदुपरांत आयुष्मान महाकस्सप थेरासन पर जा बैठे।

अब आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान उपालि को कहा – "आवुस उपालि! प्रथम पाराजिक* कहां प्रज्ञप्त किया गया?"

"राजगीर में, भंते!"

"किसको लेकर?"

"सुदिन्न कलन्द-पुत्त को लेकर।"

"किस बात में?"

"मैथुन-धर्म में।"

तब आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान उपालि को प्रथम पाराजिक की वस्तु (=कथा) पूछी, निदान (=कारण) भी पूछा, पुद्गल (=व्यक्ति) भी पूछा, प्रज्ञप्ति (=विधान) भी पूछी, अनुप्रज्ञप्ति (=संबोधन) भी पूछी, आपत्ति (=दोषदंड) भी पूछी, अनापत्ति भी पूछी।

"आवुस उपालि! द्वितीय पाराजिक कहां प्रज्ञापित हुआ?"

"राजगीर में, भंते!"

---

* भिक्षुओं द्वारा किये जाने वाले चार प्रधान दोष – जैसे मैथुन, चोरी, हत्या और चमत्कार प्रदर्शन (जिनके परिणामस्वरूप उन्हें भिक्षु-संघ से जीवन भर के लिए निष्कासित कर दिया जाता है)।

"किसको लेकर?"

"धनिय कुंभकार-पुत्त को लेकर।"

"किस बात में?"

"अदिन्नादान (=चोरी) में।"

तब आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान उपालि से द्वितीय पाराजिक की कथा, निदान, अनापत्ति इत्यादि के बारे में भी पूछा।

"आवुस उपालि! तृतीय पाराजिक कहां प्रज्ञापित हुआ?"

"वेसाली (वैशाली) में, भंते!"

"किसको लेकर?"

"बहुत से भिक्षुओं को लेकर।"

"किस बात में?"

"नर-हत्या के विषय में।"

तब आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान उपालि से तृतीय पाराजिक की कथा, निदान, अनापत्ति इत्यादि के बारे में भी पूछा।

इसी प्रकार आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान उपालि से दोनों (भिक्षु, भिक्षुणी के) विनयों को पूछा। आयुष्मान उपालि पूछे गये विनय का उत्तर देते रहे।

बहुश्रुत, स्मृतिमान आनन्द से धर्म (सूत्र) पूछना

आयुष्मान महाकस्सप ने संघ को ज्ञापित किया – "आवुसो! संघ मुझे सुने। यदि संघ को पसंद हो, तो मैं आयुष्मान आनन्द से धर्म (=सूत्र) पूछूं?"

तब आयुष्मान आनन्द ने संघ को ज्ञापित किया – "भंते! संघ मुझे सुने। यदि संघ को पसंद हो, तो मैं आयुष्मान महाकस्सप द्वारा पूछे गये धर्म का उत्तर दूं?" तब आयुष्मान आनन्द भी संघ की मौन स्वीकृति पा धर्मासन पर जा बैठे। तदुपरांत आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान आनन्द से कहा–

"आवुस आनन्द! 'ब्रह्मजाल' (सूत्र) को कहां भाषित किया गया?"

"राजगीर और नालंदा के बीच अम्बलट्ठिका के राजागार में।"

"किसको लेकर?"

"सुप्पिय परिव्राजक और ब्रह्मदत्त माणवक को लेकर।"

तव आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान आनन्द से 'ब्रह्मजाल' के निदान के बारे में तथा व्यक्ति के बारे में पूछा।

"आयुष्मान आनन्द! 'सामञ्ञ (श्रामण्य) फल' को कहां भाषित किया गया?"

"भंते! राजगीर में जीवकम्बवन में।"

"किसके साथ?"

"अजातसत्तु वेदेहिपुत्त के साथ।"

तव आयुष्मान महाकस्सप ने 'सामञ्ञफल सुत्त' के निदान के बारे में तथा व्यक्ति के बारे में पूछा। इसी प्रकार से पांचों निकायों के बारे में पूछा; पूछे गये धर्म का आयुष्मान आनन्द ने उत्तर दिया ।

–दीघनिकाय अट्ठकथा १, पठममहासंगीतिकथा; चूळवग्ग ४३७, संगीतिनिदान

–पाराजिककण्ड अट्ठकथा, पठममहासंगीतिकथा

****

पैंतीस वर्ष की उम्र में संबोधि प्राप्ति के पश्चात, भगवान गौतम बुद्ध ने अपने परिनिर्वाण तक पैंतालीस वर्षों में ८२,००० उपदेश दिये। २,००० उपदेश उनके प्रमुख शिष्यों के थे। कुल ८४,००० उपदेशों का संग्रह 'तिपिटक' कहलाया। भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए बताये गये नियमों का संग्रह 'विनयपिटक' कहलाया। सामान्य जन के लिए दिये गये उपदेश 'सुत्तपिटक' कहलाये। 'अभिधम्मपिटक' में शरीर और चित्त का वैज्ञानिक विश्लेषण है। इस प्रकार अनमोल दुर्लभ शिक्षा को जनकल्याण के लिए संगृहीत किया गया।

अन्य धम्म-संगीतियों का आयोजन

भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात प्रथम संगीति के समान बुद्ध-वचनों को अपने शुद्ध रूप में सुरक्षित रखने के लिए समय-समय पर अन्य धम्म-संगीतियों का आयोजन भी होता रहा है। इन उत्तरवर्ती धम्म-संगीतियों का विवरण निम्न प्रकार से है –

द्वितीय धम्म-संगीति – प्रथम संगीति के सौ वर्ष बाद वेसाली (वैशाली) के वालुकाराम में राजा काळासोक के संरक्षण में आयोजित की गयी। विनय के नियमों को लेकर एक बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ था, जिसका निर्णय करने के लिए इस संगीति का आयोजन हुआ। इसमें सात सौ भिक्षुओं ने भाग लिया तथा इसकी अध्यक्षता रेवत थेर ने की। इसमें बुद्ध-वचन का पुनः संगायन किया गया।

तीसरी धम्म-संगीति – ३२६ ईसा पूर्व पाटलिपुत्त (पाटलिपुत्र) के असोकाराम नामक विहार में राजा धम्मासोक (सम्राट अशोक) के संरक्षण में हुई। थेर मोग्गलिपुत्त तिस्स ने इसकी अध्यक्षता की तथा एक हजार स्थविर भिक्षुओं ने इसमें भाग लिया। यह संगीति नौ मास तक चली। इस संगीति के दौरान थेर मोग्गलिपुत्त तिस्स ने मिथ्या मतों का खंडन करते हुए पुनः शुद्ध धम्म के स्वरूप का प्रतिपादन कर, कथावत्थु नामक ग्रंथ का संकलन किया। यह ग्रंथ तिपिटक परंपरा के अंतर्गत अभिधम्म-पिटक का एक अभिन्न अंग माना जाने लगा। बुद्ध-वचन के संगायन के पश्चात सम्राट अशोक ने सुदूर देशों में धम्म प्रचार हेतु नौ धम्मदूतों की परिषदें भेजीं। इन थेरों ने धम्म के 'पटिपत्ति' पक्ष पर वल देते हुए धम्म को विश्वव्यापी वनाया।

चौथी धम्म-संगीति – श्रीलंका में २९ वर्ष ईसा पूर्व, राजा वट्टगामिनी के समय में आयोजित की गयी। इसमें पांच सौ विद्वान थेरों ने भाग लिया तथा इसकी अध्यक्षता महाथेर रक्खित ने की। इसमें सारे तिपिटक का संगायन किया गया तथा उसे प्रथम वार लिपिवद्ध किया गया।

पांचवीं धम्म-संगीति – सन १८७१ में ब्रह्मदेश के मांडले शहर में राजा मिं डों मिं के संरक्षण में बुलायी गयी। इसमें दो हजार चार सौ विद्वान भिक्षुओं ने भाग लिया। इस संगीति की अध्यक्षता बारी-बारी से श्रद्धेय महाथेर जागराभिवंस, महाथेर नरिंदभिधज तथा महाथेर सुमंगल सामी ने की। तिपिटक का संगायन और उसे संगमरमर की पट्टियों पर लिखने का कार्य पांच मास तक चलता रहा।

छठी धम्म-संगीति – मई, १९५४ में ब्रह्मदेश के प्रधानमंत्री ऊ नू द्वारा रंगून में आयोजित की गयी। श्रद्धेय अभिधज महारट्ठगुरु भदन्त रेवत ने इसकी अध्यक्षता की तथा इसमें दो हजार पांच सौ विद्वान भिक्षुओं ने भाग लिया, जो ब्रह्मदेश, श्रीलंका, थाईलैंड, कंपूचिया, भारत आदि देशों से आये थे। उन्होंने तिपिटक तथा इसकी अट्ठकथाओं, टीकाओं आदि को पुनः जांचा और इनके प्रामाणिक संस्करण का ब्रम लिपि में मुद्रण करवाया। इस संगीति का समापन सन १९५६ की वैशाख पूर्णिमा के दिन भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के २,५०० वर्ष पूरे होने पर हुआ।

इन छः ऐतिहासिक संगीतियों में पहली तीन भारत में, चौथी श्रीलंका में तथा पांचवीं और छठी ब्रह्मदेश में आयोजित हुईं। इन संगीतियों के कारण ही भगवान बुद्ध के २,५५० वर्ष बाद भी धम्म अपने शुद्ध रूप में जीवित है और निरंतर प्रचारित एवं प्रसारित हो रहा है। वस्तुतः इसका सारा श्रेय महास्थविर महाकस्सप को जाता है, जिन्होंने अपनी सूझ-बूझ से प्रथम संगीति का आयोजन करवा कर बुद्धवचन को सुरक्षित रखने तथा धर्म के प्रसारण की नींव रखी।

महास्थविर महाकस्सप के कतिपय उपदेश

(१)

न गणेन पुरक्खतो चरे, विमनो होति समाधि दुल्लभो।
नानाजनसङ्गहो दुखो, इति दिस्वान गणं न रोचये॥

[(भिक्षु) समूह का नेतृत्व न करे। (इससे) ध्यान बँट जाता है (और) समाधि दुर्लभ हो जाती है। अनेक प्रकार के लोगों की संगत दुःखदायी होती है। इसे देख कर समूह की इच्छा न करे।]

(२)

न कुलानि उपब्बजे मुनि, विमनो होति समाधि दुल्लभो।
सो उस्सुक्को रसानुगिद्धो, अत्थं रिञ्चति यो सुखावहो॥

[मुनि कुलों के पास न पहुँचे। (इससे) ध्यान बँट जाता है (और) समाधि दुर्लभ हो जाती है। जो (इसमें) उत्सुक रहता है (और) रस में आसक्ति रखता है, वह सुखदायी अर्थ से वंचित रह जाता है।]

(३)

पङ्कोति हि नं अवेदयुं, यावं वन्दनपूजना कुलेसु।
सुखुमं सल्ल दुरुब्बहं, सक्कारो कापुरिसेन दुज्जहो॥

[कुलों में प्राप्त वंदना और पूजा को (ज्ञानियों ने) पंक (कीचड़) कहा है। यह सत्कार ऐसा सूक्ष्म कंटक है जिसका निकालना कठिन होता है; क्योंकि कायर साधक सत्कार का परित्याग बड़ी कठिनाई से कर पाते हैं।]

(४)

सेनासनम्हा ओरुय्ह, नगरं पिण्डाय पाविसिं।
भुञ्जन्तं पुरिसं कुट्ठिं, सक्कच्चं तं उपट्ठहिं॥

[मैंने (कभी) शयनासन से उठ कर भिक्षा के लिए नगर में प्रवेश किया। (वहां) भोजन करते हुए कोढ़ी को देख कर मैं अनुग्रहपूर्वक उसके पास पहुँचा।]

(५)

सो मे पक्केन हत्थेन, आलोपं उपनामयि।
आलोपं पक्खिपन्तस्स, अङ्गुलि चेत्थ छिज्जथ॥

[उसने मुझे पके हुए हाथ से एक पिंड दे दिया। पिंड डालते समय एक अंगुलि भी (हाथ से) अलग होकर पात्र में गिर गयी।]

(६)

कुट्टमूलञ्च च निस्साय, आलोपं तं अभुञ्जिसं।
भुञ्जमाने वा भुत्ते वा, जेगुच्छं मे न विज्जति॥

[दीवार के समीप बैठ कर मैंने उस पिंड को खा लिया। खाते समय अथवा खाने के बाद मुझे घृणा नहीं हुई।]

(७)

पिण्डपातपटिक्कन्तो, सेलमारुय्ह कस्सपो।
झायति अनुपादानो, पहीनभयभेरवो॥

[कस्सप भिक्षा से लौट कर पर्वत पर चढ़ कर, आसक्तिरहित हो, भयभैरवरहित हो ध्यान करता है।]

(८)

पिण्डपातपटिक्कन्तो, सेलमारुय्ह कस्सपो।
झायति अनुपादानो, डय्हमानेसु निब्बुतो॥

[कस्सप भिक्षा से लौट कर पर्वत पर चढ़ कर, आसक्तिरहित हो, जलते हुए लोगों के बीच शांत हो ध्यान करता है।]

(९)

पिण्डपातपटिक्कन्तो, सेलमारुय्ह कस्सपो।
झायति अनुपादानो, कतकिच्चो अनासवो॥

[कस्सप भिक्षा से लौट कर पर्वत पर चढ़ कर, आसक्तिरहित हो, कृतकृत्य हो, आस्रवरहित होकर ध्यान करता है।]

(१०)

पञ्ञवन्तं तथा तादिं, सीलेसु सुसमाहितं।
चेतोसमथमनुत्तं, तञ्चे विञ्ञू पसंसरे॥

[उस आदरणीय की, जो प्रज्ञावान है, शीलों में सुसमाहित है, जिसका चित्त शांत है, विज्ञ पुरुष प्रशंसा करते हैं।]

(११)

यस्स सब्रह्मचारीसु, गारवो नूपलब्भति।
आरका होति सद्धम्मा, नभतो पुथवी यथा॥

[जिसमें सब्रह्मचारियों के प्रति गौरव उपलब्ध नहीं है, वह सद्धर्म से उतना ही दूर है जितना कि पृथ्वी आकाश से।]

(१२)

उद्धतो चपलो भिक्खु, पंसुकूलेन पारुतो।
कपीव सीहचम्मेन, न सो तेनुपसोभति॥

[जिस भिक्षु का चित्त विक्षिप्त है, जो चपल है पर जो चीथड़ों का बना चीवर पहनता है, वह सिंह की खाल पहने हुए बंदर की तरह उसमें शोभित नहीं होता।]

(१३)

अनुद्धतो अचपलो, निपको संवुतिन्द्रियो।
सोभति पंसुकूलेन, सीहोव गिरिगब्भरे॥

[जिसका चित्त विक्षिप्त नहीं है, जो चपल नहीं है, जो कुशल है और जिसकी इंद्रियां संयत हैं, वह चीथड़ों के बने चीवर से वैसे ही सुशोभित होता है जैसे कि सिंह पर्वत की कंदरा में॥]

(१४)

यावता बुद्धखेत्तम्हि, ठपयित्वा महामुनिं।
धुतगुणे विसिट्ठोहं, सदिसो मे न विज्जति॥

[बुद्ध-शासन में महामुनि को छोड़ कर मैं ही धुतगुणों में विशिष्ट हूं, मेरे समान कोई नहीं है।]

(१५)

परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, नत्थि दानि पुनब्भवो॥

[मैंने शास्ता की सेवा की है और बुद्ध-शासन को पूरा किया है। भारी बोझ को उतार दिया है। अब मेरे लिए कोई नया जन्म नहीं है।]

(१६)

सतिपट्ठानगीवो सो, सद्धाहत्थो महामुनि।
पञ्ञासीसो महाञाणी, सदा चरति निब्बुतो॥

[जिन महामुनि (भगवान बुद्ध) की 'सतिपट्ठान' ग्रीवा है, श्रद्धा हाथ है और प्रज्ञा शीश है – वे महाज्ञानी सदा शांत हो विचरते हैं।]

–थेरगाथा १०५४-१०५९, १०६२-१०६४, १०८०-१०८१, १०८३-१०८४, १०९०-१०९१, १०९३, महाकस्सपत्थेरगाथा

****

धुतंग

प्रासंगिक विषय पर निम्नांकित दो ग्रंथों में विस्तार से चर्चा की गयी है:

१. विसुद्धिमग्गो (विशुद्धिमार्ग)

२. मिलिन्दपञ्हो (मिलिन्दप्रश्न)

इन्हीं में से कुछ उद्धरण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

भिक्षु जीवन की सार्थकता

जैसे मनुष्य शरीर के पोषण के लिए भोजन करते हैं, हितप्रद होने से औषध का सेवन करते हैं, उपकारक मित्र का सेवन करते हैं, पार जाने के लिए नौका पर सवार होते हैं, सुगंधि के लिए माला और इत्र लगाते हैं, भय से मुक्ति पाने के लिए सुरक्षित स्थान पर चले जाते हैं, आधार के लिए पृथ्वी पर खड़े होते हैं, हुनर सीखने के लिए प्रवीण व्यक्ति को खोजते हैं, यश पाने के लिए राजा की सेवा करते हैं, वैसे ही आर्यजन भिक्षु-जीवन को सार्थक बनाने के लिए धुतंग का पालन करते हैं।

तेरह धुतंग

धुतंग तेरह प्रकार के होते हैं जिनका ब्यौरा निम्न प्रकार से है:

क्रमांक	धुतंग	आशय
(१)	पंसुकूलिकंग	चीथड़ों का चीवर पहनना
(२)	तेचीवरिकंग	तीन चीवर धारण करना
(३)	पिण्डपातिकंग	भिक्षान्न मात्र पर निर्वाह करना
(४)	सपदानचारिकंग	एक घर से दूसरे घर, बिना किसी घर को छोड़े हुए, भिक्षा ग्रहण करना
(५)	एकासनिकंग	दिन में एक ही बार खाना
(६)	पत्तपिण्डिकंग	भिक्षापात्र में जितना भोजन आ जाय उतना ही भोजन करना
(७)	खलुपच्छाभत्तिकंग	एक बार भोजन समाप्त कर लेने के उपरांत फिर कुछ न खाना
(८)	आरञ्ञिकंग	अरण्य (जंगल) में रहना
(९)	रुक्खमूलिकंग	वृक्ष के नीचे रहना
(१०)	अब्भोकासिकंग	खुले आकाश के तले रहना
(११)	सोसानिकंग	श्मशान में रहना
(१२)	यथासन्थतिकंग	यथाप्राप्त निवास-स्थान में रहना
(१३)	नेसज्जिकंग	शय्या को त्याग कर केवल बैठे रहना

–परिवार ४४३, धुतङ्गवग्ग; विसुद्धिमग्ग १.२४-३६, धुतङ्गनिद्देस

इन दुष्कर नियमों को निभा पाना हर किसी के बस की बात नहीं है। इस प्रकार के व्यक्ति ही इन्हें निभा सकते हैं – श्रद्धालु, लज्जालु, धृतिमान, निष्कपट, उद्देश्यरत, अचंचल, सीखने के लिए तत्पर, दृढ़-संकल्प, ध्यान-बहुल और मैत्री में विहार करने वाले।

–मिलिन्दपञ्हपाळि ५.४.१, धुतङ्गपञ्ह

'विसुद्धिमग्ग' के प्रणेता बुद्धघोस ने इनके बारे में इतनी दृष्टियों से विचार किया है – (१) अर्थ, (२) लक्षण, (३) ग्रहण करने की विधि, (४) विभिन्न प्रकार (उत्तम, मध्यम, हीन), (५) भंग होना, (६) व्रत-रक्षण की प्रशंसा, (७) कुशल-त्रिक के रूप में वर्गीकरण, (८) समष्टिगत विवरण, तथा (९) व्यक्तिगत विवरण।

–विसुद्धिमग्ग १.२२-२३, धुतङ्गनिद्देस

इनका विधान अल्पेच्छता, संतोष आदि गुणों की वृद्धि के लिए किया गया है। ये चित्त के मैल दूर करने के लिए हैं। पर इनका संपूर्ण अभ्यास हर किसी के लिए अनिवार्य नहीं है। तथागत की सामान्य शिक्षा का पूरा बल 'मध्यम मार्ग' अपनाने पर है।

धुतंग पालन करने वालों के गुण

जो कोई धुतंग को ठीक से पालन करते हैं वे नीचे अंकित अठारह गुणों से युक्त हो जाते हैं:

(१) उनका आचार नितांत परिशुद्ध हो जाता है;
(२) वे मार्ग को तय कर लेते हैं;
(३) अपने शरीर और अपनी वाणी पर उनका नियंत्रण होता है;
(४) उनका मानसिक आचार सुविशुद्ध होता है;
(५) उनका उत्साह बना रहता है;
(६) वे निर्भीक होते हैं;
(७) उनकी आत्मदृष्टि दूर हो चुकी होती है;
(८) उनमें हिंसा का भाव नहीं रहता है;
(९) उनमें मैत्री-भावना व्याप्त रहती है;
(१०) उनका आहार समझ-बूझ कर होता है;
(११) वे सभी जीवों से प्रतिष्ठा पाते हैं;
(१२) वे भोजन की मात्रा को जानने वाले होते हैं;
(१३) वे सदा जागरूक बने रहते हैं;
(१४) वे बिना घर-द्वार के होते हैं;
(१५) वे जहां उचित समझते हैं वहीं विहार कर लेते हैं;
(१६) वे पाप से घृणा करते हैं;
(१७) वे विवेक (एकांत) में आनंद अनुभव करते हैं;
(१८) वे सदा अप्रमत्त रहते हैं।

–मिलिन्दपञ्हपालि ५.४.१, धुतङ्गपञ्ह

परिशिष्ट २

तुरित-चारिका

योग्य व्यक्ति को देखकर, उसके दूर रहने पर भी उपदेश देने के लिए भगवान बुद्ध का वहां तुरंत जाना "तुरित-चारिका" कहा जाता है।

कुछ उदाहरण

जिसके निमित्त तुरित-चारिका की गयी	इस हेतु एक मुहूर्त में तय किया गया मार्ग
महाकस्सप	तीन गव्यूति*
आळवक	तीस योजन
अंगुलिमाल	तीस योजन
पुक्कुसाति	पैंतालीस योजन
महाकप्पिन	बीस योजन
खदिरवनिय	सात योजन
वनवासी श्रामणेर (सारिपुत्त के शिष्य)	तीन गव्यूति और एक सौ बीस योजन

---

* 'योजन' का एक चौथाई भाग